साहू गोयम पण्णा ते

भाग-1

संघ शास्ता शासन प्रभावक
गुरुदेव श्री सुदर्शन लाल जी म.
के प्रवचन

संपादकः
गुरु सुदर्शन शिष्य जय मुनि

जय जिनशासन प्रकाशन

साहू गोयम पण्णा ते

भाग—1

संघ शास्ता शासन प्रभावक
गुरुदेव श्री सुदर्शन लाल जी म.
के प्रवचन

संपादकः
गुरु सुदर्शन शिष्य जय मुनि

जय जिनशासन प्रकाशन

प्रथम संस्करण — जनवरी 2022
सर्वाधिकार © प्रकाशक

प्रकाशक / प्राप्ति स्थान :–
रविन्द्र जैन
जय जिनशासन प्रकाशन
212, वीर अपार्टमैन्टस्, सैक्टर 13,
रोहिणी, दिल्ली-110 085
Mob: +91-98102 87446
Email : jaijinshaasanprakaashan@gmail.com

मुद्रक :–
सिस्टम्स् विज़न, नई दिल्ली
Mob: +91-98102 12565
Email: systemsvision96@gmail.com

SAHU GOYAM PANNA TE

Autho :– गुरु सुदर्शन शिष्य—जय मुनि

इस पुस्तक के सर्वाधिकार सुरक्षित हैं। प्रकाशक की लिखित अनुमति के बिना इसके किसी भी अंश की, फोटोकॉपी एवं रिकार्डिंग सहित इलेक्ट्रॉनिक अथवा मशीनी, किसी भी माध्यम से, अथवा ज्ञान के संग्रहण एवं पुनर्प्रयोग की किसी भी प्रणाली द्वारा, किसी भी रूप में, पुनरुत्पादित अथवा संचारित-प्रसारित नहीं किया जा सकता।

साहू गोयम पण्णा ते छिन्नो मे संसओ इमो।
नमो ते संसयातीत सव्व सुत्त महोदही ॥

अनुक्रमणिका

प्रकाशकीय..... vi

गुरुत्थुई..... vii

1. मृत्युदर्शन से आत्मदर्शन की ओर..... 1

2. क्षमाशीलता का उत्कर्ष.....14

3. उच्चता के लक्षण.....22

4. क्रोधशमन की विधि.....36

5. भाषा संयम के लिए अल्प भाषण जरूरी.....50

6. स्वाध्याय का अमृत रस.....64

7. ध्यान तक पहुंचना.....79

8. बनो धीर वीर गंभीर.....93

9. छिमा बड़न को चाहिए.....108

10. संभल संभलकर चलो.....124

11. अहिंसा की उपलब्धियां.....139

प्रकाशकीय

परम पूज्य संघशास्ता गुरुदेव श्री सुदर्शनलाल जी म. का जन्म शताब्दी वर्ष उपस्थित है। इस उपलक्ष्य में उनके प्रवचनों की शृंखला पाठकों को उपलब्ध हो, ऐसी भावना बनी। इस भावना पूर्ति में ये पहला प्रयास है।

पूज्य गुरुदेव जी म. ने अपने देवलोक से एक सप्ताह पूर्व अपने समृद्ध कोष में से 76 पन्ने अपने सुशिष्य आगम रत्नाकर बहुश्रुत श्री जय मुनि जी म. को दिये थे। जिनका पुनर्लेखन श्री नरेश मुनि जी म. की प्रेरणा से इन्होंने 2015 में किया था। वह संग्रह हमें प्राप्त हुआ। अब आप ग्रहण करें, औरों को पहुँचाएं। इस प्रक्रिया को जारी रखने से आत्मकल्याण और सर्वकल्याण हो सकता है।

प्रवचन शृंखला से पूर्व पूज्य गुरुदेव जी म. की स्मृति में वीरत्थुई के अनुकरण पर गुरुत्थुई (प्राकृत तथा हिन्दी) भी संलग्न की है। गुरुभक्त इसे याद करें तथा नित्य स्मरण में शामिल करें।

"जय जिनशासन प्रकाशन"
रविन्द्र जैन

गुरुत्थुई

इच्छंति नाउं चरियं विसुद्धं, भत्ता सुनिट्ठा हु सुदंसणस्स।
सो केरिसो धम्मकहा च तस्स, संघस्स सेवा गुरुणा कया जा ॥1॥
भक्त श्रद्धानिष्ठ श्रावक गुरु सुदर्शन लाल के
चाहते हैं जानना कुछ अंश वृत्त विशाल के।
किस तरह जीवन जीया कैसी सुनाते थे कथा,
और चलाई किस तरह थी संघ की पावन प्रथा ॥1॥

रोहीतए तस्स सुजम्ममासी, पुत्तं पसूया अइ सुन्दरी सा।
बुद्धिनिहाणं पिउ चंदगी उ, जग्गूमलो तस्स पियामहो भू ॥2॥
जन्म रोहतक शहर में गुरुदेव का था जब हुआ,
सुन्दरी मां का हृदय पुलकित प्रफुल्लित तब हुआ।
बुद्धि के सिन्धु पिताश्री चंदगीराम वकील थे,
बाबा जग्गूमल हृदय के सरल, सेवाशील थे ॥2॥

दिक्खा गहीया मयणा गुरुत्तो, सेवा कया सव्वगुरूण तेण।
सीसा विणीआ लहिआ अणेगे, पुण्णं विसिट्ठं फलिअं नु दिट्ठं ॥3॥
मदन गुरुवर के चरण में ली प्रव्रज्या भगवती,
वरिष्ठ संतों की सदा सेवा की बन सेवाव्रती।
शिष्य भी पाए अनेकों जातिकुल संपन्न थे,
पुण्य पुंजों के धनी कृतपुण्य थे और धन्य थे ॥3॥

महव्वया पंच अहिंस सच्चं, अतेणगं संगह भोग-चाओ।
सव्वं स सम्मं अइयार-सुन्नं, पालिय लक्खं तुरियं पवण्णो ॥4॥
जो महाव्रत पांच प्रभुवर वीर ने फरमाए हैं,
प्रथम अहिंसा सत्य फिर अस्तेय क्रमशः आए हैं।
ब्रह्मचर्य अपरिग्रह पाले निर् अतिचार थे,
इसलिए गुरुवर सुदर्शन पहुंचे सिद्धि द्वार थे ॥4॥

गुत्तितयं पंच समीइओ सो, णिच्चं पमाया विरओ वहेइ।
चिंतेइ अंतो गहिओ नु वेसो, सामण्ण-धम्मस्स वहामि सुट्ठु ॥5॥
तीन गुप्ति पांच समिति में समाया धर्म है,
इनका आराधन ही गुरुवर ने चुना निज कर्म है।
सोचते थे वेष संयम का लिया जो भाव से,
उसको सजाऊँगा सदा उल्लास से और चाव से ॥5॥

समाहिओ चत्त-गुरुत्तभारो, चउव्विहं पालइ सो समाहिं।
विणम्मया-नाण-तवो तईओ, आयार-भावो तुरियो समाही ॥6॥
थे समाहित अहम् का हर भार छोड़ा ज्ञान से,
आगमोक्त समाधि पाली प्राण से और जान से।
विनय समाधि, श्रुत समाधि, तप समाधिवान् थे,
नव्य युग में आचरण उनके ही मान्य प्रमाण थे ॥6॥

कोहं समित्ता पसमं लहीअ, माणं वमित्ता विणयं गहीअ।
मायं चइत्ता रिउयं पवण्णो, लोहं विजित्ता परमो सुही भू ॥7॥
क्रोध की अग्नि शमित कर शांति के सागर बने,
मान मद का वमन करके नम्रता के घर बने।
माया छल त्यागे सरलता उनकी ये पहचान थी,
लोभ को ठोकर लगा पाई सुखों की खान थी ॥7॥

काएण वाया तह माणसेणं, पावं जहित्ता सुह-साहगो नु।
सज्झाय-सुज्झाण-रओ विमुत्तो, आसी वियावच्च-परो गुरूणं ॥8॥
काया से, वाणी से, मन से लोग करते पाप हैं,
तीनों के सम्यग् प्रवर्तक शुभदिशा में आप हैं।
मन लगाया ध्यान में वाणी लगी स्वाध्याय में,
सेवा इतनी गहन की आया पसीना काय में ॥8॥

नाणं पहूणं पइभाइ नायं, सद्धा गहीरा जिण-वाणीए उ।
चारित्तमुग्गं अइ निम्मलं ते, एवं तिगं ते रयणस्स लद्धं ॥9॥
अपने प्रतिभाबल से आगम ज्ञान सीखा गहनतम,
जिन वचन पर श्रद्धा गहरी कहते ये हैं प्राणसम।
शुद्धतम चारित्र धन उत्साह से अर्जित किया,
रत्नत्रय को जिंदगी भर आपने संचित किया ॥9॥

संघस्स सोहा तव लक्खमासी, तीए कए अप्पियमंगमंगं।
सोढा दुहा माणस-देहिया नु, जम्हा सिया सासण-हीलणा न ॥10॥
संघ की शोभा बढ़े ये जिंदगी का ध्येय था,
देह भी अर्पित किया बलिदान अननुमेय था।
मन की पीड़ा देह के दुःख इसलिए झेले प्रचुर,
हो नहीं जाए मलिन शासन का ये निर्मल मुकुर ॥10॥

विनम्मयाए सिसुया तवोच्चा, विवेग-धम्मेण उ जोव्वणं पि।
वुड्ढत्तमुच्चं तव खंति-धम्मा, सव्वं पवित्तं सुहदंसणस्स ॥11॥
आपका शैशव टिका था नम्रता की नींव पर,
और जवानी पर रखी सुविवेक की पैनी नजर।
निज बुढ़ापे को क्षमा शांति से था मंडित किया,
गुरु सुदर्शन ने बड़ा ही श्रेष्ठतम जीवन जिया ॥11॥

विवज्जिया अत्थकहा जणेहिं, कुओ कहं-कामपरं कहेज्जा।
सज्जो सया धम्मकहा-पयारे, तम्हा हि लोगो पवणो सुधम्मे ॥12॥
अर्थ के लोभी जनों से भी न की आर्थिक कथा,
कामभोगों की कथा का आप में नहीं लेश था।
धार्मिक कथा कहने में उनको मिलता हृदयानन्द था,
सर्वजन ने चखा तब ही धर्म का मकरन्द था ॥12॥

सुत्तेसु दिट्ठी गहणा णुमण्णा, अत्थेसु वित्थारपरा य बुद्धी।
आया पवित्तो उभयेण जाओ, नन्नत्थ पासामि मुणिं सरिक्खं ॥13॥
आगमों के तीन पथ हैं सूत्र अर्थ और है उभय,
सूत्रों को कण्ठस्थ करने में लगाया था समय।
अर्थ को सीखा सिखाया और बढ़ाया था सदा,
तदुभय का पारगामी उनसा मिलता है कदा ॥13॥

कया किवासी दुहिये जणम्मि, पारे दुहाणं बहवो सुतिण्णा।
न भेदभावो हियए कयावि, कओ तुए सव्वजणो सरिच्छो ॥14॥
दुखित जन पर निजकृपा का मेघ बरसाते रहे,
उसके कारण लाखों प्राणी दुख का हल पाते रहे।
नहीं किसी पर कम या ज्यादा कृपा में की कृपणता,
सर्वजन ने मानी थी निष्पक्षता की निपुणता ॥14॥

सम्माणदाया गुरुए जणम्मि, पेम्मस्स वासी णियसीस-वग्गे।
साहेज्ज-कत्ता सम-बन्धुयाए, तुला न तुब्भं विसमा कयावि ॥15॥
अपने से जो थे बड़े उनको दिया सम्मान था,
अपने से छोटों में बांटा स्नेह का वरदान था।
समवयस्कों से लिया सहयोग और देते रहे,
शुद्ध भावों से वो नौका संघ की खेते रहे ॥15॥

पुण्णेण पुण्णो कलसो तवासी, सक्कार सेवा भरिओ अ सिन्धू।
निन्नत्त-सुण्णा चरिआ सयासी, उच्चत्त-मेरू-सिहरो दुरूढो ॥16॥
पुण्य से भरपूर जीवन का कलश उनका रहा,
संस्कार सेवा के मधुर सिन्धु ये यश उनका रहा।
चर्या उनकी निम्नतागामी नहीं हर्गिज हुई,
उच्चता मेरू की उनके शील ने हरदम छुई ॥16॥

अंतो बहिं सारिस जीवणो तुं, मायं न काउं तुए सक्कमासी।
साहू सया उज्जुय भूअ बुद्धी, धण्णो गुरू वंदिअ-पूय-पाओ। ॥17॥
आन्तरिक और बाह्य जीवन एक सा उनका रहा,
माया छल करने का उनके पास बुद्धिबल न था।
सच्चा साधु है वही जो ऋजुक बुद्धि युक्त हो,
आप सच्चे संत हो क्योंकि कपट से मुक्त हो ॥17॥

उदारचेआ विसएसु आसी, अहीअवं सो निहिले सुगंथे।
सारं तओ गेण्हिअ दिण्णवं तं, हंसो पयो गेण्हइ नीरमज्झा ॥18॥
ज्ञान का हर विषय सीखा क्षुद्रता से दूर रह,
अच्छे ग्रंथों को पढ़ा जिज्ञासा से भरपूर रह।
सार लेकर पुस्तकों से बांटते जग को रहे,
नीर क्षीर विवेक में सब हंस सा उनको कहें ॥18॥

आलोयणा तेण कया सईया, अन्नो न आलोयण-पत्त-मासी।
सोच्चाण दोसे नियगे न कुद्धो, तम्हा महावीर-समं चरित्तं ॥19॥
आत्मदोषों की खुशी से की सदा आलोचना,
औरों की आलोचना का मन नहीं हर्गिज बना।
दूसरों ने उनकी निंदा की तो धीरज से सुनी,
इसलिए महावीर की उपमा सही हमने चुनी ॥19॥

बालत्तणे साहु-गुरूण पासे, सो सिक्खिओ धम्म-मयाण तत्तं।
पिआमहो पव्वइओ जया उ, पयाणुसारी तइया नु जाओ ॥20॥
बालपन में संत मुनियों का मिला सान्निध्य था,
सीखा उनसे तुमने सारा धर्म तत्त्व वैविध्य था।
जब पितामह जग्गूमल जी बन गए दीक्षित मुनि,
उनके पीछे चल दिए और उनकी ही राहें चुनी ॥20॥

जीवेसु सव्वेसु वि मित्तयासी, पमोय-भावो गुणिसुं सयासी।
कारुण्ण-भावो दुहिएसु तस्स, मज्झत्थ-भावो विवरीय-लोगे ॥21॥
सर्व जीवों के प्रति मैत्री रखी हर पल मधुर,
गुणिजनों के प्रति तुम्हारी भावना मुदिता प्रचुर।
क्लिष्ट और पीडित जनों से भाव करुणा का रखा,
और विरोधी व्यक्तियों को मध्य दृष्टि से लखा ॥21॥

सम्मत्तमुक्किट्ठमुदाहु खाइं, नाणं तु पुव्वाण चउद्दसण्हं।
चारित्तमुत्तं अहखाय-नामं, साहूण सेट्ठं उ सुदंसणं णु ॥22॥
सम्यक्त्व सबसे श्रेष्ठ क्षायिक मानी है जिनधर्म में,
चौदह पूर्वी श्रेष्ठतम श्रुतज्ञानी हैं जिनधर्म में।
यथाख्यात चारित्र जैसे श्रेष्ठतम चारित्र है,
साधुओं में यों सुदर्शन गुरुदेव पवित्र हैं ॥22॥

सव्वट्ठसिद्धं हि विमाणमुच्चं, धम्मे अहिंसा जह सव्व-सेट्ठा।
अणुत्तरग्गं जह मोक्ख-सोक्खं, साहूण सेट्ठो उ सुदंसणो नु ॥23॥
देवलोकों में यथा सर्वार्थ सिद्ध विमान है,
धर्मों में सर्वोच्च करुणा और दया का स्थान है।
मोक्ष सुख सर्वोच्च सुख है जिसकी है उपमा नहीं,
साधुओं में गुरु सुदर्शन की कोई तुलना नहीं ॥23॥

वाणी जिणिंदाण अणागसत्थि, सिद्धन्त-सेट्ठं सियवायमुच्चं।
पगास-सेट्ठो जह नेत्तजोई, साहूण सेट्ठो उ सुदंसणो नु ॥24॥
जैसे जिनवाणी सभी भाषाओं में उत्तम कही,
और सिद्धान्तों में जैसे अनेकान्त महिमा रही।
रोशनी जैसे नयन की श्रेष्ठतम मानी गई,
श्रेष्ठता संतों में ऐसे आप की जानी गई ॥24॥

कम्हारदेसो भरहे पसत्थो, गंधेसु केसर-माहु पूयं।
तंतेसु सेट्ठं जह लोगतंतं, साहूण सेट्ठो उ सुदंसणो नु ॥25॥
कश्मीर का सौन्दर्य जैसे श्रेष्ठ भारत में कहा,
और केसर भी वहां का गंध में उत्तम रहा।
श्रेष्ठ वो शासन प्रणाली लोकतंत्र है जहां,
गुरु सुदर्शन की महत्ता जानता सारा जहां ॥25॥

विहारभूमी हरियाण आसी, पंजाब जम्मू तह मारु-भूमी।
यू.पी. तवासी चरणेहि धण्णा, सव्वो हि देसो रिणधारगोऽत्थि ॥26॥
आप विचरे तो हुआ हरियाणा भी हरियाला है,
पंजाब जम्मू का इलाका आपका मतवाला है।
यू.पी. को पावन किया राजस्थान छूआ जरा,
देश सारा आपके उपकारों से है ऋण भरा ॥26॥

मंसासणं छड्डिअ मज्जपाणं, जूयं अ तेण्णं बहवो जुवाणा।
सम्मग्गगामी सयलो हु संघो, तवोवयारो गणिउं ण सक्को ॥27॥
प्यार से तुमने छुड़ाए मांसभक्षण मद्यपान,
जूआ चोरी के कुपथ से बच गए लाखों जवान
संघ रक्षा में बहाया था पसीना देह का,
उपकार गिनना है असंभव जैसे पुष्कर मेह का ॥27॥

परंपरेयं चलए अबाहा, सिरी-मयाराम गणो विभाइ।
पुज्जो अ णिच्चं मयणो मुणिंदो, सव्वं तवायार-पयार हेऊ ॥28॥
परम्परा संयम की अब भी चालू हमको दीखती,
मयाराम गण की प्रथा को आज जनता सीखती।
मदन गुरुवर के पुजारी बोलते जयकार हैं,
उसका कारण गुरु सुदर्शन का आचार प्रचार है। ॥28॥

सव्वत्थ पुज्जो तह माणणिज्जो, सुदंसणो नाम महामुणी सो।
करेउ दासे नियगे किवं नु, मे जीवियं होज्ज जहा कयत्थं ॥29॥
सबकी श्रद्धा पूजा के जो पात्र हैं महनीय हैं,
गुरु सुदर्शन महामुनि के चरण युग नमनीय हैं
दास पर करना कृपा है दास करता प्रार्थना,
हो सके जीवन सफल और हो सफल ये साधना ॥29॥

1. मृत्युदर्शन से आत्मदर्शन की ओर

साहू गोयम पण्णा ते छिन्नो मे संसओ इमो।
नमो ते संसयातीत सव्व सुत्त महोदही ॥

पूज्य गुरुदेवों की कृपा से जो कुछ सीखा है, कुछ देर आपके समक्ष रखेंगे। भव्य जीव धर्म आराधन करें, रत्नत्रय को उज्ज्वल करें, यही हमारी कोटिशः मंगलकामनाएं हैं।

आगम में श्रमण भगवान् महावीर ने फरमाया कि जीवन अनित्य है। जीवन की पूरी प्रक्रिया पर अनित्यता की छाया है। जो जन्मा है उसे मरना होगा। जो सूर्य उगता है वह अस्त होता ही है। हर खिलने वाला फूल मुरझाता है। लेकिन कौन है वह प्राणी जो जीवन के उस आखिरी दौर से वाकिफ हो।

'आगाह अपनी मौत से कोई बशर नहीं
सामान सौ बरस के कल की खबर नहीं'

एवन्ता कुमार ने भगवान् की वाणी सुनी और उनकी वाणी का सार समझ लिया। उसने अपनी मां से कहा था—मां, मेरी मां, मैं जानता हूं कि जो जन्मा है वह एक दिन अवश्य मरेगा। तू भी, मैं भी। मगर मैं ये नहीं जानता कि कब, कहाँ और कैसे मरूंगा। एक छोटा सा बालक मृत्यु की सच्चाई को जान लेता है जबकि हम बड़ी-2 उम्र बिताकर भी इस सच्चाई को नहीं जान पाते।

महाभारत में वर्णन आया है कि युधिष्ठिर अपने चारों भाइयों के साथ वनवास बिता रहा था। तब प्यास लगने पर युधिष्ठिर ने छोटे भाई सहदेव को पानी लेने के लिए भेजा। सहदेव एक तालाब पर पहुंचा। जैसे ही सहदेव ने अपनी झारी पानी में डुबोई, तुरंत एक आकाशवाणी हुई। 'मैं इस तालाब का अभिशप्त यक्ष हूं। पहले मुझे मेरे प्रश्नों का

उत्तर दो, उसके बाद ही पानी भर सकोगे।' लेकिन सहदेव को जल्दी थी। जल्दबाज आदमी को अपनी जरूरत का ही ध्यान रहता है। वह किसी और के प्रति ध्यान नहीं रखता। इसीलिए तो उतावला बावला होता है। सहदेव उतावला था। उसने उस पर ध्यान नहीं दिया और पानी भरने की चेष्टा करने लगा। और तुरंत बेहोश हो गया। चारों भाई उसके आने की प्रतीक्षा करते रहे। वह नहीं आया तो उसी दिशा में नकुल पहुंचा। भाई तो वह भी सहदेव का ही था, वही स्वभाव, वही जल्दबाजी। बस आव देखा न ताव, पानी का घड़ा पानी में डाला और भरने लगा। कहां फुर्सत थी कि यक्ष की आवाज सुनता और जवाब देता। वहीं सहदेव के बराबर में चारों खाने चित्त हो गया। दोनों भाई नहीं लौटे, तो एक-2 करके भीम और अर्जुन भी आए और यक्ष के प्रकोप के शिकार हो गए। एक तो प्यास के मारे युधिष्ठिर के प्राण निकले जा रहे थे, दूसरे चारों भाइयों के न लौटने की चिंता थी। वे खुद उठे, तालाब की तरफ बढ़े और तालाब के किनारे चारों भाईयों को मूर्च्छित देखा। स्थिति का जायजा लेने लगे। यही युधिष्ठिर की विशेषता थी। वे अपना संतुलन नहीं खोते थे, घबराते नहीं थे, पानी लेने के लिए बढ़े। ताकि भाइयों के मुख पर डाल उन्हें ठीक कर सकूं। परंतु फिर वही आकाशवाणी हुई। 'मेरे प्रश्नों का उत्तर देकर ही पानी ले सकते हो, नहीं तो अपने भाइयों की तरह तुम भी मूर्च्छित हो जाओगे।' युधिष्ठिर को भाइयों की मूर्च्छा का कारण समझ में आ गया। पानी से पीछे हट उन्होंने यक्ष के प्रश्नों का उत्तर दिया। उन यक्ष प्रश्नों में एक प्रश्न बहुत प्रसिद्ध रहा है, वह है— 'किमाश्चर्यम्—संसार में सबसे बड़ा आश्चर्य, अजूबा क्या है?' युधिष्ठिर ने बड़ी ***तहम्मुल मिजाजी***[1] से उसका उत्तर देते हुए कहा—

'अहनि अहनि भूतानि गच्छन्ति यममन्दिरम्,
शेषा जीवितु मिच्छन्ति किमाश्चर्यमतः परम्'

---

1 संतुलित बुद्धि

दिन प्रतिदिन जीव मृत्यु की ओर जा रहा हैं फिर भी दूसरे जीव जीने की अमर लालसा लिए हुए हैं। इससे बड़ा आश्चर्य क्या होगा?

जीने की तीव्र इच्छा ने मानव को सर्वत्र-सर्वदा-विद्यमान मृत्यु को देखने से ही वञ्चित कर दिया है। जो व्यक्ति मृत्यु को देखना बंद कर देता है, वह धर्म को भी देखना बंद कर देता है। मृत्यु का दर्शन, मृत्यु का अनुभव मनुष्य को धर्म की ओर प्रेरित करता है। जब तक मानव जाति मृत्यु के क्रूर प्रहारों से अनभिज्ञ रही तब तक उसे धर्म की आवश्यकता महसूस नहीं हुई। मृत्यु के दर्शन का मतलब मृत्यु का भय नहीं है अपितु मृत्यु के दर्शन का मतलब है– मृत्यु के भय से मुक्त हो जाना।

एक जिज्ञासु कबीर के पास आया और उससे पूछने लगा, 'क्या आप बताएंगे कि ईश्वर प्राप्ति का कौन सा मार्ग है?' प्रश्न सुनकर कबीर कुछ देर चुप रहे। फिर खिड़की से बाहर झांक कर देखा। फिर बोलने लगे, 'सूर्यास्त होने वाला है संध्या होने को है।' ऐसा सुन जिज्ञासु बिना कोई प्रश्न किए चुपचाप चला गया।

कबीर के बगल में एक व्यक्ति और बैठा था। उसे कबीर का यह व्यवहार अटपटा लगा और ज्यादा हैरानी उस जिज्ञासु की वजह से ही हुई। आखिर उसने कबीर से पूछ ही लिया, ''कबीर सा., 'उसने पूछा क्या और उत्तर क्या मिला?' हैरानी की बात तो ये है कि उसने प्रतिवाद भी नहीं किया और चलता बना। आपने उसके प्रश्न का उत्तर न देकर उसे टाल दिया है।'' कबीर ने कहा, 'अपनी-2 समझ की बात है। मैंने उसके प्रश्न का ही उत्तर दिया है। यदि आपको सन्देह हो तो उससे जाकर पूछ लो।'

वह व्यक्ति दौड़कर जिज्ञासु के पास गया और बोला, 'क्या कबीर के उत्तर से आप को संतुष्टि हुई?' जिज्ञासु ने कहा, 'हां, कबीर ने ठीक उत्तर दिया है। उन्होंने कहा था 'मेरे जीवन की सांझ होने वाली है, अब ईश्वर मिलन में देर नहीं करनी चाहिए। जो काम मुझको काफी पहले

करना चाहिए था, लेकिन नहीं कर सका था, कम से कम अब तो कुछ कर ही लूं, क्योंकि जीवन के आखिरी दौर में तो प्रभु भक्ति कर ही लेनी चाहिए। मुझे कबीर साहब ने संदेश दिया है कि अपनी मृत्यु का दर्शन कर लेना ही ईश्वर प्राप्ति का सरल मार्ग है।'

कबीर का यह संदेश केवल उस जिज्ञासु के लिए ही नहीं था, यह संदेश तो हर प्रमादी आत्मा को नींद से जगाने के लिए है। कबीर अपने आप में सदा मृत्यु को सम्मुख रखते थे और इसी कारण एक खास वैराग्य भाव में जीते थे। वे मृत्यु से भयभीत नहीं थे, पर मृत्यु कभी भी आ सकती है इस वास्तविकता से परिचित थे। उनके मन ने यह कभी भुलाया नहीं कि ये मौजूदा पल भी मौत की छाया से ढका हुआ है। उन्होंने एक दोहे में लिखा है–

झूठे सुख को सुख कहै मानत है मन मोद।
जगत चबैना काल का कुछ मुंह में कुछ गोद ॥

कौन ऐसा प्राणी है जो पल-2 मृत्यु की ओर नहीं जा रहा। आदमी सांस लेता है और छोड़ता है। सांस लेता हुआ आदमी जीवन को दिखा रहा है और सांस छोड़ता हुआ आदमी मौत को दिखा रहा है।

भगवान् महावीर ने भी फरमाया है कि हर जीव आवीचिमरण कर रहा है। कोई इसे जीवन कह रहा है, कोई इसे मृत्यु कह रहा है। मृत्यु को समझने का फायदा ये होता है कि जीवन से अनावश्यक आसक्ति विदा हो जाती है। फिजूल के राग-द्वेषों का झंझट घट जाता है।

एक बार कोई जिज्ञासु कबीर के दर्शन करने उसके घर पर गया। लेकिन उस समय कबीर वहां नहीं थे। जिज्ञासु ने कबीर की पत्नी से पूछा कि कबीर साहब के दर्शन कहां होंगे। वह बोली, वे अभी किसी की शवयात्रा में मरघट पर गए हैं, वहां जाकर आप उनसे मिल सकते हो। आगन्तुक कुछ जल्दी में था। पूछने लगा, मैं पहली बार उनके दर्शन करने आया हूं। मैं उन्हें पहचानता नहीं हूं। क्या आप बता सकती हैं

कि उस भीड़ में मैं उनको किसी तरह पहचान सकूं। कबीर की पत्नी ने कहा, 'जिस आदमी की आंखों में, मस्तक पर, चाल में वैराग्य झलकता दिखाई दे, अलग किस्म का नूर बरस रहा हो समझ लेना वही कबीर है।'

आने वाला जिज्ञासु श्मशान की तरफ दौड़ा। वहां सैकड़ों आदमी मृत व्यक्ति का दाह संस्कार करने आए हुए थे। सब अपनी आंखों से उस मृत आदमी को निहार रहे थे और जीवन की अनित्यता का अहसास कर रहे थे। सबके मन में एक वैराग्य का भाव उमड़ रहा था। संसार की नश्वरता का ख्याल करके उन्हें किसी ऊंचे लक्ष्य का भाव जागृत हो रहा था। उनकी आंखों में, चेहरे पर, माथे पर वैराग्य का भाव उमड़ा दिखाई दे रहा था। आने वाला व्यक्ति उनमें कबीर को ढूंढ नहीं सका। वह दौड़ा-2 फिर कबीर की पत्नी के पास पहुँचा। कहने लगा, वहां तो सैकड़ों लोगों को वैराग्य के नूर में नहाते देखकर आया हूं। तो बताओ, मैं कबीर को अलग से कैसे पहचानूं। कबीर की पत्नी बोली, ऐसा करो, आप श्मशान के गेट के बाहर खड़े हो जाओ, अंदर से बाहर आने के बाद जिसके चेहरे पर वैराग्य की झलक दिखाई दे, तुम उसे कबीर मान लेना। जिज्ञासु फिर वहां पहुंचा। गेट के बाहर खड़ा हो गया। लोग आते जाते हैं और चेहरे का भाव लुप्त हो जाता है। सबके दिमागों में दुनियादारी के ख्याल उमड़ने लगे थे और उनका वही दुनियावी ख्याल उनके माथे पर उतरने लगा था। केवल एक आदमी ऐसा था जिसके चेहरे की आभा में कोई फर्क नहीं पड़ा। आगन्तुक पहचान गया कि ये हैं कबीर साहब। जिसको श्मशान के अन्दर या बाहर की स्थिति का नहीं अपितु मृत्यु की शाश्वतता का सदा आभास रहता था। इसी कारण कबीर का वैराग्य मसाणिया वैराग्य नहीं था। बहुत सारे लोग होते हैं जिन्हें तरह-2 से वैराग्य की लहरें लपेट लेती हैं पर जैसे ही लहर बदलती है उनका वैराग्य छूट जाता है। किसी को व्यापार में घाटा लग गया, दीवाला निकलने की नौबत आई, बस एकदम संन्यास की याद आई। किसी की बीवी गुजर गई, जवान बेटा काल कर गया, बच्चों ने घर से

धक्का दे दिया, भयंकर रोग लग गया, तो वैराग्य की ओर मन मुड़ने लग गया। मगर जैसे ही हालत बदली तुरन्त संसार प्यारा लगने लग गया। ऐसे भी लोग होते हैं जिन्हें 'खिचड़ी' वैराग्य होता है। वो ऐसे कि एक युवक ने अपनी मां से कहा, मां, मैं दीक्षा लेकर आत्म कल्याण करना चाहता हूं। मां ने उसे बहुत समझाया पर उसने तो जिद्द ठान ली। मां का मन भारी हो गया। अपने बेटे को विदा देने से पूर्व उसने उसके लिए खिचड़ी तैयार की। अच्छी तरह घी डाला। प्यार से पुत्र की थाली में परोस दी। पुत्र को खिलाती जाती है और रोती जाती है। मां को रोती देख पुत्र भी रोने लगा। मां ने पूछा—बेटा, तू क्यों रो रहा है। पुत्र ने मां से पूछ लिया कि मां, तू क्यों रो रही है। मां ने सहज भाव से कह दिया—बेटा, आज तू घर से चला जाएगा, आज के बाद मैं किसे खिचड़ी खिलाऊंगी। पुत्र ने भी अपने रोने का कारण बताते हुए कहा, मैं इस चिंता में रो रहा हूं कि आज के बाद ऐसी बढ़िया खिचड़ी मुझे किसके हाथों से खाने को मिलेगी। ये कहकर वह और भी जोर से रोने लगा। मां ने कहा, बेटा, तू तो घर पर ही रह तेरे बस की बात नहीं है संयम पालना। तेरा वैराग्य तो खिचड़ी वैराग्य है।

किसी को मसाणिया वैराग्य होता है, किसी को खिचड़ी वैराग्य होता है। परंतु वास्तविक वैराग्य वह जो मृत्यु के ताण्डव नृत्य को देखने के बाद उत्पन्न हेाता है। जैसे कि महात्मा बुद्ध ने अपनी रथयात्रा के दौरान एक रोगी, एक वृद्ध और एक मृत आदमी को देखा और सोचने लगे, जिस प्रकार ये आदमी रोग से घिर चुका है, ऐसे ही मैं भी रोगी हो सकता हूं। जैसे यह आदमी बूढ़ा हो गया है ऐसे ही मैं भी बूढ़ा हो सकता हूं, हो जाऊंगा, या कि हो ही चुका हूं। जैसे यह आदमी मौत के मुंह में जा चुका है ऐसे ही मैं भी कभी न कभी मौत का शिकार हो जाऊंगा। महात्मा बुद्ध ने तो यहां तक विचार कर लिया कि न केवल भविष्य में मैं मृत्यु का शिकार हो जाऊंगा अपितु अब भी मैं मृत्यु के दौर से गुजर रहा हूं। मैं अपने आपको कैसे निश्चिंत कर सकता हूं। जब चारों ओर से मृत्यु की भीषण ज्वालाएं लपलपा रही हैं, मृत्यु के

क्रूर प्रहार मेरे अंग-2 को घायल कर रहे हैं। मैं किस प्रकार से मोह निद्रा में सो सकता हूं।

अब्भाहयम्मि लोगम्मि सव्वओ परिवारिए।
अमोहाहिं पडन्तीहिं रइं नोवलभामहं ॥[1]

भृगु पुरोहित के दोनों पुत्रों– देवभद्र और यशोभद्र ने माता पिता से कहा था कि हे पूज्य पिता जी, माताजी, ये समस्त संसार घिर गया है, इस पर वार हो रहे हैं और तलवार की धाराएं निरंतर पड़ रही है, हमें पलभर के लिए भी चैन नहीं है।' अपने पुत्रों की परेशानी को माता पिता समझ नहीं सके। उन्हें तो कहीं से कोई खतरा नजर नहीं आ रहा था, आए भी कैसे? शाही महलों में रह रहे थे। भरपूर सुख सुविधाएं थी, राज्य सत्ता के करीब थे, जिन्दगी के ऐशो आराम में उन्हें मृत्यु का दर्शन होता भी कैसे? परंतु उनके लख्ते जिगरों की तो हालत उनसे बिल्कुल उलट थी, उन्हें मौजूदा सुख-सुविधाओं के बीच एक भयंकर आर्त्तनाद सुनाई दे रहा था। माता-पिता ने उनसे पूछा–

केण अब्भाहओ लोगो केण व परिवारिओ,
का वा अमोहा वुत्ता जाया चिंतावरा हुमे ॥[2]

'पुत्रो, हमें तो तुमने उलझन में डाल दिया। तुम ये बताओ कि किस तरह का हमला हो रहा है? किस शत्रु शक्ति ने घेरा डाला हुआ है? तथा किस तरह के वार तुम पर हो रहे हैं?' माता पिता के संशयों का निवारण करते हुए पुत्रों ने कहा–

मच्चुणा अब्भाहओ लोओ, जराए परिवारिओ,
अमोहा रयणी वुत्ता, एवं ताय वियाणह ॥[3]

---

1 उत्तराध्ययन 14 अध्ययन 21 गाथा
2 उत्तराध्ययन 14 अध्ययन 22 गाथा
3 उत्तराध्ययन 14 अध्ययन 23 गाथा

कृपया, आप हमारी समस्या को समझने की कोशिश करें क्योंकि हम देख रहे हैं जीवन पर मृत्यु का आक्रमण हो रहा है। रोग और बुढ़ापे ने जिन्दगी को हर ओर से घेर लिया है, दिन और रात के बीच गुजरते हुए काल के प्रहारों से जीवन छिन्न-भिन्न हुआ जा रहा है, आप हमारी मदद करें, अवश्य करें।

देवभद्र यशोभद्र अगर चढ़ती जवानी में मृत्यु के दर्शन कर सकते हैं तो क्या वो बुजुर्ग महानुभाव जिनके पैर कब्र में लटके हुए हैं उन्हें ये अहसास नहीं हो सकता? हो भी सकता है, न भी हो। जिनकी आंखें खुली हों, वे किसी उम्र में, किसी भी स्थान पर मृत्यु को देख सकते है और जिन्होंने विषय भोगों में ही आनन्द मान लिया है उन्हें तो आखिरी घड़ी में भी मृत्यु का अहसास नहीं होता। उम्र का वैराग्य से कोई नाता नहीं है। एक वृद्ध महाशय मृत्यु शय्या पर पड़ा हुआ था। परिवार वाले वैद्य जी को बुला लाए। ताकि पता चल जाए कि कितने सांस बाकी है। वैद्य ने मरणासन्न बुजुर्ग का हाथ लेकर नब्ज टटोली। कुछ देर नब्ज गिनी। तभी बूढ़े की जिंदगी में जैसे कोई चमक पैदा हुई और पूछने लगा, क्या मेरे हाथ पर कंगना बांध रहे हो?

बूढ़ा आखिरी सांस गिन रहा है और फिर भी कंगना बंधवाने की हवस लगी हुई है। ये आत्मा भी मोह से कितनी घिरी हुई है।

पूज्य गुरुदेव फरमाया करते कि मोही आत्मा को अपना लक्ष्य कभी हासिल नहीं होता। दरअसल तो जीवन में विवेक की प्राप्ति बहुत ही मुश्किल है। पांच तरह का विवेक बड़ी कठिनाई से आता है।

1. अपने स्वार्थ को छोड़ परमार्थ साधने का विवेक आना बहुत मुश्किल है।
2. अपने छोटे से छोटे दोष को दूर करने का विवेक आना मुश्किल है।
3. अपने गुणों को कम से कम समझकर हजम करने का विवेक आना मुश्किल है।

4. न्यायमार्ग और धर्म मार्ग पर अस्खलित भाव से चलने का विवेक आना मुश्किल है।
5. कृतघ्न और विरोधी का भी बुरा न सोचने का विवेक आना मुश्किल है।

जिन शासन में ऐसे महापुरुष हुए हैं जिन्होंने मृत्यु के प्रसंग को महोत्सव बनाया था। मेरे गुरु भाई, तपस्वी श्री बद्री प्रसाद जी म. ने अपने संथारे से साबित कर दिया कि वे न तो मौत से डरते हैं, न मौत के विचार से। साधारण मनुष्य की तो हालत ये है कि वह मौत के जिक्र से ही घबरा जाता है। पर बताओ, क्या घबराने से मृत्यु से बचा जा सकता है? नहीं, कभी नहीं।

मृत्यो र्विभेषि किं बाल, न स भीतं विमुञ्चति।

हे अनजान इंसान, तू क्यों मृत्यु से डरता है, क्या वह डरने वाले इंसान पर रहम करके छोड़ देती है? नहीं, वह नहीं छोड़ती, बल्कि डरने वाले प्राणी तो मृत्यु के शिकंजे में और जल्दी आते हैं।

यहूदियों में एक लोककथा चलती है कि एक संत शहर से बाहर निकल रहा था, उसने देखा कि कोई काली, डरावनी सी छाया शहर की ओर धीरे-2 बढ़ रही है। उस संत ने उस छाया से पूछा कि तू कौन है और कहां जा रही है? उस छाया ने ही उत्तर दिया, 'मैं महामारी हूं और इस शहर में 10 दिन के लिए जा रही हूं। मैं 10 दिन में 10 हजार आदमियों को मारूंगी।' संत उसे कुछ आगे कहता, उससे पहले तो वह छाया अन्तर्धान हो गई। शहर में जाकर महामारी ने वो प्रलय ढाया कि देखते-2 सारा शहर तबाह हो गया। एक सामान्य आकलन के अनुसार एक लाख मानव मृत्यु के ग्रास बन गए। संत शहर के गली-मौहल्लों से भली-भांति परिचित था। ऐसे महाविनाश की उसे कल्पना भी नहीं थी। हां, दस हजार आदमियों के मरने की उसे आशंका थी, पर ये आंकड़ा तो लाख तक पहुंच गया। वह टूट चुका था। दस दिन बाद फिर एक

शाम का समय। वह शहर की ओर जा रहा था। एक काली छाया शहर से बाहर निकल रही थी, वह पहचान गया, ये तो महामारी है। उसने उसे ललकारते हुए कहा, 'झूठी, तूने मुझे कहा था कि मैं शहर में दस हजार आदमियों की बलि लूंगी, मगर तूने इस शहर के एक लाख आदमी मार दिए। मैं तेरी बात पर कैसे यकीन करूं। वह काली डरावनी छाया ठिठकी और बोली—महात्मन्, आप अपनी जगह सही हैं, मैं अपनी जगह। इस शहर में एक लाख आदमी मर गए ये सही है, लेकिन मैंने केवल 10 हजार आदमी ही मारे हैं। महामारी से केवल 10 हजार आदमी प्रभावित हुए और मरे, बाकी 90 हजार आदमी तो मृत्यु के डर से मरे हैं। उन्हें कोई बीमारी नहीं आई, कोई संक्रमण नहीं हुआ। मगर 10 हजार आदमियों की मौत की दहशत ने 90 हजार को और मार दिया।

यह है मृत्यु की सच्चाई। इंसान इतना कमजोर है कि मृत्यु के भय से सदा ग्रस्त रहता है। धन्य थे मेरे गुरु भाई तपस्विराज, जो कहते रहे, **'मृत्यु मेरे हाथ का खिलौना है।'** उन्होंने संथारे को विश्वव्यापी बना दिया। उनकी निर्भीकता और निडरता के सैकड़ों किस्से हैं मगर उनका संथारा उन किस्सों में सिरमौर है। किस प्रकार एक वीर योद्धा 72 दिन तक मृत्यु से जूझता रहा, न हिला, न कांपा, न डरा। वह दिन धन्य होगा जब मैं भी अपने गुरु भाई की तरह इस चादर को छोड़ूंगा।

हमें अपने पूर्वजों के गौरव को याद करना है जो जीवन भर और जीवन के आखिरी क्षणों में अप्रमत्त भाव से आत्मा के दर्शन करते रहे। ऐसी ही एक सुनहरी घटना याद आ रही है।

कोटा संप्रदाय के एक महान आचार्य श्री दौलतराम जी म. हुए हैं। विक्रम संवत् 1801 (सन् 1744) में कालीपीपल गांव में उनका जन्म हुआ था। कुल 13 साल की आयु में उन्होंने राजस्थानी संत आचार्य श्री मयाराम जी म. के चरणों में दीक्षा ली थी। उनका अधिकांश विचरण कोटा और आसपास के एरिये में हुआ। वहां के 300 परिवार

ऐसे थे जो जन्म से जैन नहीं होते हुए भी उनकी कृपा से जैन धर्म की ओर आकर्षित हुए थे। उनकी प्रवचन शैली बड़ी गजब की थी। उत्तर भारत में भी एक बार उनका आगमन हुआ था। दिल्ली चांदनी चौक में उन्होंने चातुर्मास भी किया था। दिल्ली के श्रावक श्री दलपतसिंह जी से आगम पढ़ने के उद्देश्य से वे यहां आए थे। आचार्य श्री जी ने श्रावक से कहा, मैं आपसे आगमों का विशेष अध्ययन करने कोटा से चलकर आया हूं। आप कौन सा आगम पढ़ाना चाहोगे? श्रावक जी ने कहा, अन्नदाता, मेरी इच्छा तो ये है कि पहले आप दशवैकालिक सूत्र ही पढ़ें। आचार्य जी तो भौंचक्के रह गए। उन्हें तो संभावना थी कि श्रावक जी प्रज्ञापना या भगवती जैसे गंभीर आगम को पढ़ाएंगे। दशवैकालिक तो प्रतिदिन पढ़ते ही हैं, लघु मुनियों को पढ़ाते भी हैं। पर जब श्रावक से पढ़ना ही है तो इनकी इच्छा को अधिमान देना ही चाहिए। कुछ मन से कुछ बेमन, आचार्य श्री जी ने दशवैकालिक का अध्ययन प्रारंभ कर दिया। श्रावक श्री दलपतसिंह जी ने अपने प्रतिभा बल और अनुभव बल के आधार पर दशवैकालिक सूत्र पढ़ाते-2 उसकी गाथाओं की व्याख्या के माध्यम से 32 आगमों का सर्वांगीण पारायण करवा दिया। तब आचार्य श्री जी को समझ में आया कि दशवैकालिक में क्या रहस्य समाया हुआ है तथा श्रावक जी का अध्ययन कितना विशाल तथा गहरा है। श्रावक श्री दलपत सिंह जी भी आचार्य श्री दौलतराम जी म. की गरिमा-महिमा से इतने प्रभावित हुए कि उन्हें अपना गुरु मानने लगे। उनमें उन्हें समग्र जिनशासन का सार प्रतीत होने लगा। श्रावक जी के चिंतन का केन्द्र केवल आचार्य श्री जी हो गए। आचार्य श्री जी कहां विचर रहे हैं, क्या स्थिति चल रही है, इसकी जानकारी भी लेते रहते थे। एक बार उन्होंने सपने में छिपते हुए सूर्य को देखा और उनका ध्यान तुरंत अपने आराध्य गुरुदेव की ओर गया। उन्हें लगा कि जिनशासन का सूर्य कहीं अस्ताचल की ओर तो नहीं जा रहा। दशाश्रुत स्कन्ध आगम में इस प्रकार के समाधि स्थानों का जिक्र आता है। वहां यथार्थ स्वप्न दर्शन का उल्लेख है।

'अहातच्चं सुमिणं पासित्तए'

कोई उच्च कोटि की आत्मा स्वप्न से सही-2 घटना क्रम का ज्ञान प्राप्त कर लेती है। श्रावक दलपत सिंह की अंतरात्मा पुकार उठी कि मुझे अपने गुरुदेव को सूचना देनी चाहिए। कई जगह पूछताछ करवाई तब पता चला कि वे जयपुर के निकट 'रावजीरा उणियारा' नामक गांव में हैं। उस युग में आवागमन के साधन बहुत कम थे। न श्रावक दर्शन करने जाते थे। आजकल तो धक्का पेल चल रही है। लोग भागे जा रहे हैं। संत बुलवा भी रहे हैं, श्रावक भी जा रहे हैं, पर पुरानी श्रद्धाएं कहां हैं?

श्रावक जी घोड़े पर सवार हुए। चलते-2 उणियारा पहुंचे। कमरे के बाहर छोटे साधु बैठे थे। श्रावक जी को रोककर उनसे वार्तालाप करने लगे। इसी बीच एक संत ने अंदर जाकर गुरुदेव को सूचना भी दे दी कि श्रावक दलपत सिंह जी आए हुए है। आचार्य श्री जी तो उनके आने की सूचना से चकित हो गए। उनके दिल के किसी कोने में एक विचार कौंधा, श्रावक जी किसी विशेष, अति विशेष प्रयोजन से आए हैं। वे प्रायः दिल्ली से बाहर जाते ही नहीं। विचारों का तार जुड़ गया। उन्हें भी अहसास हो गया कि मेरे जीवन का सूर्य ढलने वाला है, ये संदेश देने आए हैं और तत्काल उन्होंने चौविहार संथारे का प्रत्याख्यान ले लिया। श्रावक जी अंदर आए। वन्दना की। सामान्य वार्तालाप किया। स्वास्थ्य आदि की पृच्छा की। एकदम संथारे की बात करते भी कैसे? जब कुछ देर हो गई तो अपने सपने का जिक्र किया। हजूर, ऐसे-2 सपना आया है। न जाने, ये सूर्यास्त का दर्शन किस बात को झलकाता है। मुझे तो आशंका है कि कहीं ये आप सरीखे महापुरुष की ओर इशारा तो नहीं? आचार्य श्री जी ने उस श्रावक को आश्वस्त करते हुए कहा—'श्रावक जी, आपका संदेह सच्चा है। आपने सपना देखकर मेरे अंतिम समय का अन्दाजा लगाया और मैंने आपके आने से अपनी आयु का आखिरी वक्त आ गया है ये जाना। आप मुझे सावधान करने आए

हो, ये आपका बहुत बड़ा अहसान है, मैंने आपके आते ही संथारे का प्रत्याख्यान कर लिया है।' ये था जीवन और मृत्यु को समान समझने का जज़्बा। उनसठ साल की क्या उम्र थी, मगर जागृत-अप्रमत्त आत्माएं तो सदा ही सावधान रहती है। उन्हें लंबी या छोटी उम्र की चिंता नहीं होती। बस आराधना हो जाए। यही तड़प उनके दिलोदिमाग में छाई रहती है। सात दिन के बाद उनका संथारा सीझ गया। आचार्य श्री जी आराधना के शिखरों पर आरूढ़ हो गए।

सूर्य छिप जाने का यह प्रतीक, हमारे कथा साहित्य में भी वर्णित है। जैन रामायण के अनुसार ही हनुमान जी सायंकाल अपने महल की छत पर खड़े प्रकृति का अवलोकन कर रहे थे। पश्चिम दिशा में सूर्य नारायण अपनी भव्य आभा के साथ जगमगा रहा था। आहिस्ता-2 सूर्य क्षितिज की ओर उतरने लगा। हनुमान जी उस दृश्य को अपनी आंखों में समेट रहे थे। देखते-2 सूर्य गायब हो गया। आकाश लाल-पीली घटाओं का मिश्रण बना, फिर कुछ-2 कालिस वहां उतरने लगी और लो, कुछ ही क्षणों में अंधकार की परत आकाश और धरती पर छा गई। हनुमान जी के चित्त पर चिंतन का दूसरा पर्दा उभरकर आया। मेरा जीवन सूर्य संध्या की ओर ढल रहा है। अस्त नहीं हुआ है पर होने में देर भी नहीं, क्या बचे हुए समय में आत्म-कल्याण नहीं साधा जा सकता? चित्त से ही उत्तर मिला—**'खणं जाणाहि पंडिए'** इस क्षण की पहचान कर। और उन्होंने तुरंत वैराग्य भाव से जीवन को रंग दिया। दीक्षा ली। घाती अघाती कर्मों का क्षय किया और अंत में सिद्ध बुद्ध मुक्त हो गए।

इसी तरह जो आत्माएं अपने जीवन के अंतिम क्षणों के प्रति जागरूक होकर साधना के मार्ग पर चलेंगी उनका यहां भी तथा आगे भी कल्याण होगा।

2. क्षमाशीलता का उत्कर्ष

साहू गोयम पण्णा ते छिन्नो मे संसओ इमो।
नमो ते संसयातीत सव्व सुत्त महोदही ॥

पूज्य गुरुदेवों की कृपा से जो कुछ सीखा है कुछ देर आपके समक्ष रखेंगे। भव्य जीव धर्म आराधन करें, रत्नत्रय को उज्ज्वल करें, यही हमारी कोटिशः मंगलकामनाएं हैं।

आगम में श्रमण भगवान् महावीर ने फरमाया है कि क्षमाभाव से जीव निर्भयता का वातावरण तैयार करता है। क्षमाशील व्यक्ति स्वयं किसी से भय नहीं खाता, वह किसी अन्य प्राणी को भयभीत नहीं करता और उसकी निर्भयता के प्रभाव से अन्य प्राणी भी उसके प्रति मित्रता रखने लगते हैं। यह एक संभावना है कि एक क्षमावान मानव के विचारों से विरोधी प्राणी का मन बदल जाए। यदि विरोधी का मन बदलता है तो बहुत अच्छा, यदि वह नहीं भी बदलता तो भी क्षमावान व्यक्ति अपनी आत्मा का तो कल्याण कर ही लेता है। क्षमावान का मुख्य लक्ष्य दूसरे को बदलने का नहीं, अपने को बदलने का होता है। दूसरे का बदलाव एक By-Product हो सकता है Main Product तो स्वयं को बदलना है। भगवान् महावीर के क्षमा प्रभाव से चण्ड कौशिक सांप का जीवन तुरंत बदल गया जबकि संगम देवता पर उनकी क्षमा का 6 महीने तक कोई असर नहीं पड़ा। 6 महीने प्रभु को पीड़ा देकर भी संगम का दिल नहीं बदला। हां, उसे इस बात का मलाल रहा कि मैंने छह महीने तक स्वर्ग के सुख भी छोड़े और महावीर स्वामी को विचलित भी नहीं कर पाया। वह अपनी पराजय से दुःखी हुआ था न कि गलत चेष्टाओं से। दूसरी तरफ भगवान् की आंखों में इसलिए पानी आ गया कि बेचारा इन कर्मों का जब फल भोगेगा तब कितने कष्ट भोगेगा। इसके निमित्त से मेरे कर्म तो टूट गए पर मेरे निमित्त से इसके

कर्म बंध गए। आचार्य हेमचन्द्र ने तो भगवान् महावीर के इस क्षमा गुण की स्तुति करते हुए लिखा है—

कृतापराधेऽपि जने कृपामंथर तारयोः,
ईषद् वाष्पार्द्रयोर्भद्रं श्री वीर जिन नेत्रयोः ॥

अपराध करने वाले संगम पर भगवान् की आंखों की पुतलियों में कृपा, दया, क्षमा उतर आई और उनकी आंखों में दो बूंदे उभर आई। हे प्रभु, आपकी वही आंखें सारे संसार का भला कर सकती हैं।

एक महान कवि धनपाल ने भी इसी क्षमाशीलता को नए अंदाज में पेश किया है—

बलं जगद् रक्षण ध्वंसन क्षमं, क्षमा च सा संगमके कृतागसि,
इतीव संचिन्त्य विमुच्य मानसं रूषेव रोषस्तव नाथ विनिर्ययौ ॥

हे प्रभो महावीर, आपके अंदर का गुस्सा आपसे खफा होकर आपसे किनारा कर गया क्योंकि उसने देख लिया कि आपके पास ताकत तो इतनी है कि पूरे जगत् को बचा और मिटा सकते हो, लेकिन आपने दुष्ट संगम को फिर भी माफ कर दिया। गुस्से को आपके जीवन में अपनी जगह नहीं मिल पाई और वह भाग गया।

भगवान् महावीर की क्षमा तो जगत् में मशहूर है ही। संसार में जितने भी महापुरुष हुए हैं, सभी ने क्षमा को अपनाया है। क्षमा उनकी महानता का लक्षण था। उनकी महानता का प्रतिफल था। Cross पर लटकते-2 भी ईसा मसीह ने प्रार्थना की थी—My God, Forgive them, they know not what they are doing. मेरे परमात्मा, मुझे सलीब पर लटकाने वाले सभी लोग अनजान हैं, तुम इनकी इस भूल को क्षमा कर देना।

कितनी गहरी सोच थी एक धर्म प्रवर्तक की। ईसाई धर्म की बुनियाद रखने वाले इस महामानव की विचारधारा को आज के ईसाई

कितना समझ पाए, ये मैं नहीं जानता, मगर मुझे लगता है जैसे भगवान् महावीर ने संगम को माफ कर दिया था, ईसा मसीह ने भी अपराधियों को क्षमा कर दिया था। कुछ लोग कहते हैं कि क्षमा करना बुज़दिली है, उनकी सोच पर मुझे तरस आता है। उन्हें पता ही नहीं कि असली क्षमा तो बहादुर ही कर सकते है, कायर नहीं। **'क्षमा वीरस्य भूषणम्'** रामधारी सिंह 'दिनकर' जैसे क्रांतिकारी कवि को लिखना पड़ा है–

दोहा–

क्षमा सोहती उस भुजंग को जिसके पास गरल है,
उसको क्या जो दन्तहीन, विष रहित, विनीत, सरल है।

क्षमा करने वाला या क्षमा मांगने वाला छोटा नहीं हो जाता, बल्कि उसका बड़प्पन बढ़ता है–

'छिमा बडन को चाहिए छोटन को उत्पात
कहा घट्यो श्री विष्णु को भृगु जो मारी लात'

विष्णु जी चोट खाकर छोटे नहीं हो गये तथा भृगु जी ठोकर मारकर बड़े नहीं हो गए। छोटापन या बड़प्पन तो दिल के दायरों पर निर्भर करता है।

जैसे भगवान् महावीर स्वामी के पूर्वभवों का वर्णन जैन ग्रंथों में प्राप्त होता है ऐसे ही महात्मा बुद्ध के पूर्वभवों का वर्णन उनके जातक ग्रंथों में उपलब्ध होता है, बुद्ध के पुराने भवों में उन्होंने कई गतियों में और योनियों में जन्म लिया था। उन भवों को बौद्ध विद्वान् 'बोधिसत्व' कहते हैं। बोधिसत्व के रूप में एक बार वे जंगली भैंसे का जीवन जी रहे थे। वैसे जंगली भैंसा बहुत गुस्सैल और भयानक होता है, मगर वह भैंसा बहुत शांत था। उसके सीधेपन का लाभ उठाकर एक बंदर उसे बहुत तंग करता था। कभी उसकी पीठ पर कूदने लगता, कभी पूँछ खींच लेता और कभी-2 तो उसकी आंखों में अंगुलि डाल देता।

परंतु बोधिसत्व अर्थात् भैंसा फिर भी शांत रहता। अब आप बताइए, ऐसे में क्या चुपचाप सहना अच्छा है या अपराधी को पकड़कर सजा देना? आप तो यहीं कहेंगे कि ख्वामखाह परेशान करने वाले को खरा-2 जवाब देना चाहिए। इसे Tit for Tat की Policy कहते हैं। **'शठे शाठ्यं समाचरेत्'** शरीफ के साथ शराफत करो, बदमाश के साथ बदमाशी। **'कण्टकेनैव कण्टकम्'** पैर में कांटा चुभ जाए तो कांटे से ही निकाला जाता है, ऐसे ही सामान्य जीवन में ईंट का बदला पत्थर से लिया जाने का सिद्धांत है। इसी साधारण धारणा के आधार पर एक दिन देवताओं ने निवेदन किया—'हे शांत मूर्ति, इस दुष्ट बंदर को दंड देना चाहिए। इसने क्या तुमको खरीद लिया है या तुम इससे डरते हो?' देवताओं के इस परामर्श पर बोधिसत्व ने जो उत्तर दिया था, वह सुनने लायक है— "इस बंदर ने न मुझको खरीदा है, न मैं इससे डरता हूं। इसकी दुष्टता भी मैं समझता हूं और केवल सिर के एक झटके से अपने सींग से फोड़ डालने का बल भी मुझ में है परंतु मैं इसके अपराध को क्षमा करता हूं।" अपने से बलवान के अपराध तो विवश होकर सभी सहन कर लेते हैं, सहनशीलता तो वह है जो अपने से निर्बल के अपराध सहन करे।'

ये सोच की उच्चता ही व्यक्ति को महान बनाती है। बोधिसत्व के रूप में जो क्षमा उन्होंने प्रारंभ की, उसका सघन रूप उनमें बुद्ध के रूप में उभर कर आया। आज तो बौद्ध धर्म विश्वव्यापी धर्म है, परंतु विश्व में फैलने से पूर्व वह उस आत्मा में प्रगट हुआ था, जो भैंसा होकर भी क्षमा कर सकती थी।

स्थानांग सूत्र में दस प्रकार का यति धर्म बताया है उसमें सबसे पहला नाम 'खंती' क्षमा का है।

'पहला लक्षण साध का जी छमा तणा भंडार'

साधु उसे कहा जाए जो क्षमा का भरा भंडार हो।

आप लोगों ने आचार्य श्री भूधरदास जी म. का नाम सुना होगा? ये श्री जयमल जी महाराज, श्री हस्तीमल जी महाराज, श्री मरुधर केसरी जी म. आदि महापुरुषों की संप्रदाय के ख्याति प्राप्त प्रतापी आचार्य थे। बड़ा प्रभाव था। कठोर तपस्या करते थे। उनका जन्म विक्रम संवत् 1727 (सन् 1670) में हुआ था तथा संवत् 1805 (सन् 1748) में स्वर्गवास हुआ। नौ साल तक अपने संघ के आचार्य भी रहे। एक बार कालूग्राम में इनका चातुर्मास चल रहा था। कालूग्राम मेड़ता के पास पड़ता है। मेड़ता वही मेड़ता है जहां मीरा का जन्म हुआ था। जिसने कृष्ण की भक्ति में अपने राज महलों की चार दीवारियों को तोड़ और छोड़ दिया था। आचार्य श्री भूधर जी के पधारने से वहां की साधारण जनता भी उनके प्रवचनों में आने लगी। वहां का एक Local बाबा था श्री नारायण दास जी। उसने देखा कि मेरे बहुत सारे भक्त जैन साधु के पास जाने लगे हैं। उसने कई लोगों को बर-खिलाफ करने की कोशिश की, मगर लोगों की श्रद्धा कम नहीं हुई। संयोग ऐसा बना कि उस साल वर्षा नहीं हुई। मारवाड़ में बरसात वैसे भी कम होती है, उस साल उतनी भी नहीं हुई। उसने कुछ लोगों को बरगलाना शुरू कर दिया और सिखा दिया कि इस जैन साधु-भूधर ने बरसात रोक रखी है। एक भोला या कहो मूर्ख किसान बहकावे में आ गया। उसने सोचा कभी मौका लगा तो इस साधु को मजा चखाऊंगा। उस मूर्ख ने अपनी अक्ल का तो प्रयोग किया नहीं और बिना वजह श्री भूधर जी म. से खार खाने लगा। उन दिनों श्री भूधर दास जी म. वहां की सूखी नदी के रेत में दोपहर को आतापना लेने जाते थे। एक दोपहर को वे आतापना ले रहे थे। उस राजपूत किसान ने देखा, अब मौका है इसे ठिकाने लगाने का। आव देखा न ताव, एक मजबूत लट्ठ लेकर आया और उनके सिर पर इतने जोर से मारा कि वो गिरकर बेहोश हो गए। मारने वाले ने सोचा—ये मर गए या थोड़ी देर में मर जाएंगे और मौके से भाग लिया। दूर से किसी ने उसे लट्ठ लेकर भागते देख लिया। देखने वाला पहले तो श्री भूधर जी म. के पास आया। देखा

कि वे बेहोश पड़े हैं। उसने चीख-2 कर लोगों को बुलाया। सैकड़ों लोग इकट्ठे हो गए। बेहोशी की हालत में तपस्वी जी को स्थानक में लाए। उनको मरहम पट्टी की। उधर चश्मदीद गवाह के बयान से अपराधी की शिनाख्त हो गई। सारा गांव टूट पड़ा। पुलिस पर दबाव पड़ा, पुलिस ने उसे तुरंत गिरफ्तार कर लिया। उसके बयानों के आधार पर बाबा को भी गिरफ्तार कर लिया गया। पूरे गांव में रोष फैल रहा था। कुछ देर बाद आचार्य जी को होश आया। लोगों ने कहा—गुरुदेव, अपराधी और उसको उकसाने वाले बाबा को पकड़ लिया है और उन्हें कड़ी से कड़ी सजा दिलवानी है। आचार्य जी ने कहा, उन दोनों को रिहा करवा दो, मुझे मारने वाले पर कोई रोष नहीं है। जैसा कि हरिकेश बल मुनि ने पुरोहितों को कहा था **'पुव्विं च इण्हिं च अणागयं च मणप्पदोसो न मे अत्थि कोइ ॥'** मेरे मन में हमलावर के प्रति न पहले नाराजगी थी, न अब है, और न भविष्य में रखूंगा।' इसलिए आप लोग तुरंत जाकर दोनों को पुलिस से छुड़वा लाओ। आचार्य श्री जी की आज्ञा से गांव के गणमान्य लोग थाने में गए। पुलिस से अपराधियों को छोड़ने की बात कही। पुलिस ने कहा—हम पर ऊपर से कार्रवाई हो सकती है, हम कैसे छोड़ सकते हैं। कानून व्यवस्था को कायम रखना हमारी जिम्मेदारी है। आप आचार्य जी को कह दो कि अब तो कानून अपना काम करेगा, वे निश्चिन्त रहें। जब आचार्य जी के पास ये संदेश पहुंचा तो उन्होंने अपने छोटे संतों से कहा—मुझे उठाओ। शिष्यों ने उठाया और वे शिष्यों का सहारा लेकर खुद थाने में पहुंच गए, अधिकारियों से कहा—जब तक आप इन्हें नहीं छोड़ोंगे, मैं आहार पानी का त्याग रखूंगा। सारा गांव पास खड़ा था। आचार्य जी अड़ गए। आखिर पुलिस ने गांव की रजामंदी से दोनों को छोड़ दिया। आचार्य श्री जी स्थानक आ गए। दोनों अपराधी भी आचार्य श्री जी के चरणों में आकर माफी मांगने लगे। उन्होंने तो पहले ही माफ कर दिया था। ये होती है सच्ची क्षमा। ये क्षमा अपने पीछे-2 नई क्रांति को साथ लेकर आई थी। As a candle lights the other candle, so a good deed gives birth

to other goodness. एक दीपक दूसरे दीपक को प्रज्वलित करता है ऐसे ही एक अच्छा कार्य संसार में अच्छाई को जन्म देता है। आचार्य श्री जी की क्षमा का बाबा नारायणदास जी पर इतना गहरा प्रभाव पड़ा कि उसकी समस्त चेतना रूपान्तरित हो गई। सोचने लगा, मैंने इतने धार्मिक ग्रंथ पढ़े हैं, वेद-पुराणों का ज्ञाता हूं, संस्कृत भाषा का प्रकाण्ड पंडित माना जाता हूं, सुंदर प्रवचन करता हूं, पर मेरे मन में अब भी तीव्र ईर्ष्या और प्रतिशोध का दावानल सुलग रहा है, जब कि ये जैन संत शायद इतने भाषाविद् न भी हो, परन्तु इनके जीवन के कण-2 में शांति, समता, सहिष्णुता और क्षमाशीलता समाई हुई है। इन्होंने मुझ जैसे हत्यारे पर भी करुणा बरसाई। अपनी जान की बाजी लगाकर मुझे जेल से निकलवाया। क्या ही अच्छा हो, मैं अपना सारा जीवन इनके चरणों में गुजारूं और इन जैसी समता अपनाऊं। अपने विचारों को मूर्त रूप देते हुए बाबा श्री नारायण दास जी आचार्य जी के पास आए और कहने लगे—मुझे अपना शिष्य बना लो, मैं स्वयं को आपके चरणों में समर्पित करना चाहता हूं। आचार्य श्री जी ने सोचा ये बहुत योग्य आत्मा है, इसे वीर शासन का शरणा देना ही चाहिए। और उन्हें दीक्षा दी गई। ये शीघ्र ही आगमों के पारगामी विद्वान् बन गए। इन्होंने ही आचार्य श्री जयमल जी म. को संस्कृत तथा अन्यान्य विषय पढ़ाए थे। क्षमा का प्रभाव कोई न नाप सकता है, न तोल सकता है। क्षमा तो परमात्मा का प्रथम और सर्वोत्तम वरदान है।

विश्व के रंगमंच पर आदमी को सैकड़ों हजारों लोगों से वास्ता पड़ता हे। कुछ नफरत के बदले में भी मोहब्बत का पैगाम सुनाते हैं और कुछ प्यार के बदले में भी खार बांटते हैं। अपने साथ धोखा करने वालों के साथ अच्छा बर्ताव करना लगभग असंभव है, परंतु धार्मिक आदमी असंभव को भी संभव बना सकता है।

पंजाब के महान प्रतापी आचार्य श्री कांशीराम जी एक शहर में विराजमान थे। वहीं एक बुजुर्ग महिला मृत्यु शय्या पर पड़ी आखिरी

सांस गिन रही थी। घर के सदस्य आचार्य श्री जी के चरणों में आए, कहने लगे—भगवन्, आप श्री जी हमारी बुढ़िया को संथारा करवा दो ताकि उसकी गति सुधर जाए। आचार्य श्री जी उस बुढ़िया के पास आए, देखा, घरड़ा[1] बोल रहा था। कुछ ही समय की मेहमान थी। कहने लगे—देवी, परलोक की यात्रा करनी है, संथारा कर लो, उसने हाथ जोड़ लिए। आचार्य श्री जी ने फिर कहा—संथारा लेने से पहले सबसे खिमत खिमावना कर लो, छोटे-बड़े सबसे माफी मांग लो, दिल का सारा बोझ उतर जाएगा। बुढ़िया से बोला नहीं जा रहा था। फिर भी जोश आ गया। कहने लगी—'और सबसे माफी मांग लूंगी, पर छोटी बहू से नहीं मांगूगी। मर जाऊंगी मगर इससे माफी मांगने की बात मंजूर नहीं।' आचार्य श्री जी ने बहुत समझाया, मगर द्वेष की गांठ नहीं खुली।

खुदा के हाथ में दो सौंप ये पुस्तारा गुनाहों का,
उठा के रखोगे सर पर ये बारे गरां कब तक ॥

जो आत्माएं इस क्षमा धर्म का पालन करेंगी, उनका यहां भी और आगे भी कल्याण होगा।

---

1 मत्यु के निकटस्थ मानव के गले की ध्वनि

3. उच्चता के लक्षण

साहू गोयम पण्णा ते छिन्नो मे संसओ इमो।
नमो ते संसयातीत सव्व सुत्त महोदही ॥

पूज्य गुरुदेवों की कृपा से जो कुछ सीखा है कुछ देर आपके समक्ष रखेंगे। भव्य जीव धर्म आराधन करें, रत्नत्रय को उज्ज्वल करें, यही हमारी कोटिशः मंगलकामनाएं हैं।

उत्तराध्ययन सूत्र में श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने फरमाया है कि कुछ लोगों का जीवन असंस्कृत होता है। असंस्कृत का मतलब ये है कि उनका जीवन ऐसे ही होता है जैसे कि Negative Photo। आप अपने Drawing Room में Negative Photo नहीं लगाते। उसे कोई देख ले तो ऐसा लगेगा मानो कोई भूत हो। वही Negative जब धुलकर साफ हो जाता है तब वह Frame में जड़ा जा सकता है। एलबम में जोड़ा जा सकता है। किसी को दिखाया जा सकता है। यही स्थिति हमारे जीवन की है। इसमें बहुत से दोष दुर्गुण हैं उनकी सफाई हो जाए तो यही जीवन एक शानदार नमूना बन सकता है। ये आत्मा अन्तरात्मा, महात्मा बनते-2 परमात्मा के लैवल तक पहुंच सकती है। नर से नारायण, कंकर से शंकर तथा शव से शिव बनने का यही तरीका है। भगवान् महावीर ने हर आत्मा को परमात्मा कहा है। उनका भाव ये है कि हर आत्मा में परमात्मा बनने की योग्यता है, उस योग्यता को उजागर करना है। उस परमात्म भाव को उजागर करने के लिए कुछ बातों का ध्यान रखना जरूरी है—(1) किसी से नफरत न करो। (2) किसी का दिल न दुःखाओ। (3) किसी से हसद[1] न करो। (4) किसी को नुकसान न पहुंचाओ। (5) किसी के हक पर छापा मत मारो। (6) गरूर से सिर ऊंचा न करो। (7) अधर्म या हराम की कमाई से परहेज

---

1 ईर्ष्या

करो। (8) नफसानी ख्वाहिशात (भोगों की इच्छा) को दबाए रखो। (9) निडर बनो। (10) क्रोध को हजम करो। (11) प्रभु को हाजिर नाजिर रखो। (12) प्रभु पर भरोसा रखो।

ये कुछ गुण ऐसे हैं जिनसे जीवन का पुण्य विकसित हो जाता है। इन सब का सार ये है कि जीवन में किसी प्रकार का निषेधात्मक विचार पैदा नहीं होता। मानव हर घटना से, हर स्थिति से, हर मौके पर अच्छाई ही लेता है और उस अच्छाई से अपने जीवन को सजाता जाता है।

भले ही संसार गुण दोषमय है, परन्तु धार्मिक व्यक्ति वह है जो दोषों का त्याग कर गुणों का चयन करता है। बाग में फूल भी हैं, कांटे भी हैं, भौंरा कांटों की ओर झांकता भी नहीं। केवल फूलों पर नजर रखता है, उन्हीं से उसकी मोहब्बत है। श्री कृष्ण म. के सामने मरा हुआ कुत्ता पड़ा था। उन्होंने उसके शरीर से निकलती दुर्गंध की ओर ध्यान नहीं दिया। केवल एक बात देखी कि इस कुत्ते के दांत बहुत सफेद है। इस गुणग्रहण की दृष्टि ने उन्हें महान् बनाया था। आज तक जितने भी अच्छे इंसान हुए हैं उनकी यही खासियत थी कि उन्होंने हर ओर से अच्छाई को ग्रहण किया और बुराई को छोड़ा।

आज के जमाने में भी ऐसे इंसान मिलते हैं जिन्होंने अपना लक्ष्य गुण ग्रहण का बनाया और दुर्गुण त्याग का। आज कलियुग है, पंचम आरा है, गिरावट का जमाना है। किंतु सब कुछ बुरा हो, ऐसा नहीं है, अच्छा भी बहुत कुछ है। आप समझते होंगे कि फिल्म-संसार में तो सब कुछ बुरा ही बुरा होगा, मगर नहीं, वहां भी एक से एक अच्छा इंसान मिलेगा। एक बार की बात है कि महान अभिनेता पृथ्वीराज कपूर की नाटक कंपनी 'पृथ्वी थियेटर्स' घाटे में चल रही थी। उन्हें घाटा पूरा करने वास्ते एक अनोखा तरीका सूझा। थियेटर का शो खत्म होने के बाद दरवाजे पर झोली लेकर खड़े हो जाते। अपने मुंह से कहते कुछ नहीं। बस खड़े रहते। नाटक देखकर निकलने वाले दर्शक कुछ न कुछ दान के रूप में डाल देते। परंतु सभी लोग एक जैसे नहीं होते। पांचों

अंगुलियां बराबर नहीं होती। एक नौजवान को शरारत सूझी। उसने जमीन पर से धूल की मुट्ठी भरी और झोली में डालने लगा।

पृथ्वी राज कपूर ने देख लिया। मगर तैश नहीं खाया, न बुरा भला कहा। बड़े शांत भाव से उस युवक का हाथ पकड़ लिया और कहने लगे—'दोस्त, इस धूल की कीमत तुम्हें मालूम नहीं है। ये अपने भारत देश की धूल है, जिसमें तुम, हम सब पैदा हुए हैं। इस धूल को झोली में डालकर इसका अपमान न कर। इसे तो मेरे सिर पर डाल। और कपूर साहब ने सचमुच वह धूल भरी मुट्ठी खुलवा कर अपने सिर पर डलवाई। सारा सिर और शरीर धूल से सन गया। फिर भी मुस्कराते रहे। वह युवक बहुत शर्मसार हुआ। उसकी जेब में जितने भी रुपये और सिक्के थे सब के सब कपूर साहब की झोली में डाल दिए।

विचारणीय बात ये है कि कपूर साहब ने एक साधारण समझी जाने वाली धूल को कितने असाधारण रूप से समझा और समझाया। वस्तु, व्यक्ति और घटनाएं तो सभी साधारण होती है। उनमें असाधारणता की खोज कुछ असाधारण प्रतिभा के धनी मानव ही करते हैं। कपूर साहब धीरे-2 बहुत आगे बढ़े। थियेटर से फिल्म जगत में आए और आज तक उनके परिवार का फिल्म इण्डस्ट्री में दबदबा है। यदि वे उस युवक की हरकत पर उत्तेजित और क्षुब्ध हो जाते तो उनकी दास्तां सुनाई नहीं जाती। धूल को लेकर एक ऐसी घटना और आती है, ये उस समय की बात है जब गांधी जी के परम शिष्य विनोबा भावे 'भूदान' आंदोलन चला रहे थे। वे गांव-2 में पदयात्रा कर रहे थे। वे पैसे का दान नहीं ले रहे थे। अपितु भूमि का दान मांगते थे। जिन लोगों के पास फालतू जमीन होती, वे ले लेते, और उसी गांव के भूमिहीन लोगों को बांट देते। चिलचिलाती धूप होती, पसीने से तरबतर विनोबा जी और उनके साथियों का जत्था देशवासियों को देशवासियों से जोड़ता जा रहा था। एक रोज दोपहर के समय एक आदमी दौड़ता हुआ आया। पहले विनोबा जी के चरणों में गिरा और एक बड़ा सा लिफाफा उनके

हाथों में सौंपा और तत्काल ओझल हो गया। विनोबा के साथी भक्तों ने सोचा शयद यह भाई अपनी जमीन के कागजात लिफाफे में डालकर लाया है। अधिक सम्मान से बचने वास्ते चुपचाप चला गया लेकिन जैसे ही उन्होंने लिफाफा खोला तो देखा कि उसमें तो धूल है। साथियों को बड़ा गुस्सा आया। सोचने लगे– 'कैसा ढोंगी था, पहले तो चरण छूए फिर चलता बना। चलो, उसे ढूंढकर पकड़ें और अच्छा सबक सिखाएं।' परंतु विनोबा जी तो मुस्कराते रहे। उन्होंने उस घटना के उजले पहलू की ओर ही ध्यान दिया तथा अपने अनुयायियों को ध्यान दिलाया, बोले–'उस आदमी ने हमारा रंचमात्र भी अपमान नहीं किया है। धूल तो अत्यंत पवित्र वस्तु है। धूल न होती तो हमारे पांव किस पर टिकते? रज्जब जी ने अपने दोहे में धूल को बहुत उच्चता वक्शी है।

'रज्जव रज ऊंची गई नरमाई के ताण,
पत्थर ठोकर खात है करड़ाई के तान।'

सब शांत हो गए। शाम को सभा जुटी। धूल वाले लिफाफे की चर्चा फिर किसी ने चला दी। विनोबा जी ने उसी शांत भाव से धूल का गुणानुवाद किया। इस घटना से एक व्यक्ति इतना अभिभूत हो गया कि उसने तत्काल उठकर ऐलान कर किया, 'वह धूल मुझे दे दीजिए, बदले में मैं संत विनोबा जी को पचास एकड़ भूमि का दान देता हूं।'

जहां दृष्टिकोण की निर्मलता होती है वहां तुच्छ से तुच्छ वस्तु में महानता के दर्शन हो जाते हैं। गुरुओं के भक्तजन अपने गुरुदेवों की चरण धूल को चन्दन समझकर तिलक लगाते हैं। पुराने श्रावक स्थानक की अपने हाथों से प्रतिलेखना करते थे। पूज्य श्री मयाराज जी म. के प्रभाव में आए हुए सरदार गुरुमुख सिंह जी पटियाला गवर्निंग कोउंसिल के प्रेजिडेण्ट होते हुए भी स्थानक की धूल अपने हाथों से साफ करते थे।

एक श्रावक कहा करते थे कि हमारे पूर्वजों की मान्यता थी कि हमारे घर में जो समृद्धि है वह संतपुरुषों की धूल की कृपा है। वे प्रतिदिन स्थानक की प्रतिलेखना करके धूल को इकट्ठी करके घर ले आते। ये उनकी श्रद्धा थी कि ये धूल संतों के चरणों की धूल है और चमत्कारी है। उस धूल के संग्रह के बाद उनके घर में सम्पन्नता का साम्राज्य आया। दरअसल, बात धूल के चमत्कार की नहीं है, बात उस भाई के भावों की है जिसने धूल को भी फूल मान लिया और खूब फला-फूला।

जिस शिष्य को गुरुओं की हर बात में फायदा ही फायदा नज़र आता है, वह कभी भी भटकता नहीं है। उत्तराध्ययन के पहले अध्ययन में भी भगवान् ने ऐसे शिष्यों की मानसिकता का उल्लेख किया है—

'अणु सासण मोवायं दुक्कडस्स य चोयणं,
हियं तं मण्णइ पण्णो वेसं होइ असाहुणो ॥'[1]

यदि गुरु म. अनुशासन के नाते कठोर कहते हैं, या अपने पास बैठाए रखते हैं या किसी गलती के लिए टोकते हैं तो प्रज्ञाशील-विनयवान् शिष्य उसमें अपनी भलाई और तरक्की मानता है, जबकि असाधु प्रवृत्ति का शिष्य गुरुओं की बातों का बुरा मानता है।

दशवैकालिक सूत्र में फरमाया है कि विनयवान शिष्य की चार विशेष बातें उसे समाधि भाव की ओर ले जाती है—(1) अनुशासन के समय भी सेवा, शुश्रूषा करता है। (2) हर आज्ञा को सम्यक् भावों से ग्रहण करता है। (3) गुरु वचनों की आराधना करता है। (4) तथा आत्माभिमानी नहीं बनता।

ऐसे उत्तम गुणों के द्वारा ही शिष्य आत्म कल्याण कर सकता है। सिक्खों के इतिहास का एक शानदार प्रसंग है कि उनके गुरु श्री अमरदास जी के दो लड़के थे, एक दामाद था, जो ये चाहते थे कि

---

1 उत्तराध्ययन 1 अध्ययन 28 गाथा

गुरु अपनी गद्दी का अधिकार हमें देकर जाएं। जब कि गुरु चाहते थे कि कोई योग्य और गुणवान आदमी ही इस विरासत को संभाले। अपने आसपास रहने वालों में से योग्यतम को छांटना था। इसलिए उन्होंने एक परीक्षा लेने का मन बनाया। 95 साल की उम्र थी। सही-2 निर्णय करना था ताकि सिक्खों की शान बढ़े ही बढ़े, घटे नहीं।

उन्होंने 4-5 निकटवर्ती भक्तों को कहा कि सामने विशाल मैदान है, इसमें अपनी-2 मिट्टी लाकर अपने-2 चबूतरे बनाओ। किसी को ये तो अहसास ही नहीं था कि गुरु का उद्देश्य क्या है? चलो, सबने मिट्टी खोदी। वहां लाकर अपने-2 ढंग से अच्छे से अच्छे चबूतरे बना दिए। गुरु ने देखे। मगर एक बात कही कि चबूतरे ठीक नहीं बने, इन्हें गिराकर दोबारा बनाओ। चाहते, न चाहते, सभी ने दोबारा फिर बना दिए। अपनी तरफ से सबने अच्छे ही बनाए परंतु गुरु ने उन्हें भी नकार दिया और तोड़कर फिर से बनाने का आदेश दे दिया। बनाने वालों को ख्याल तो बहुत हुआ परंतु फिर भी बना दिये। पर कमाल ये कि गुरु ने उन नए बने चबूतरों को भी नापसंद कर दिया। उन्हें चबूतरों की सुंदरता-असुंदरता से मतलब नहीं था। उन्हें तो बनाने वालों की श्रद्धा, निष्ठा और धैर्य को जांचना था। लोग गुरु की बुद्धि पर शक करने लगे। शायद 95 साल की उम्र होने से दिमागी संतुलन बिगड़ गया होगा। ज्यादातर ने चबूतरों को बनाना, ढहाना और फिर बनाना व्यर्थ समझकर काम से विराम ले लिया। अकेले रामदास के अलावा सब थक गए। रामदास नहीं थका। वह चबूतरा बनाता और गुरु गिरवा देते। गुरु से नाराज लोगों ने रामदास को भी रोका, 'गुरु भी पागल है तो तू भी पागल है। छोड़ क्यों नहीं देता। इनकी तो अक्ल कायम नहीं है।' इन शब्दों को सुन रामदास को रोना आ गया। ये सोचकर कि ये अपने चबूतरे की कीमत जानते हैं, अपने को अधिक अक्लमंद मानते है और गुरु को बेअक्ल कहते हैं। आखिर उसने उन्हें कह ही दिया, 'अगर गुरु की अक्ल कायम नहीं है तो किसी की भी अक्ल कायम

नहीं है। अगर गुरु इस तरह सारी उम्र हुक्म देते रहेंगे तो रामदास भी सारी उम्र चबूतरे बनाता, ढहाता और बनाता रहेगा।'

रामदास से गुरु ने सत्तर दफा चबूतरा बनवाया और गिरवाया। उनका ध्येय ये देखना था कि जिस इंसान को गुरु की शक्ति प्रदान करनी है, जिस इंसान से करोड़ों लोगों को लाभ उठाना है, उस इंसान का हृदय कितना गंभीर है। वे समझ गए कि रामदास केवल नौकर या सेवक ही नहीं है यह अगाध गुरु प्रेम से भी भरा हुआ है। उसके दृढ़ भक्तिभाव से प्रभावित हो गुरु अमरदास जी ने सेवक रामदास को अपनी छाती से लगा लिया और उसे ही गुरु गद्दी का उत्तराधिकारी घोषित कर दिया। जिस अनपढ़ युवक ने गुरु के प्रत्येक आदेश में अच्छाई के दर्शन किए, उसके सामने पढ़े-लिखे पुत्र-दामादों का दावा ठुस्स हो गया।

'कबीरा ते नर अंध है गुरु को कहते और,
हरि रूठे गुरु ठौर है गुरु रूठे नहीं ठौर।'

गुरु की आज्ञा पर मीन मेख निकालने वालों का ये लोक और परलोक दोनों ही बिगड़ जाते हैं। उन्हें परम पद की प्राप्ति इसलिए नहीं हो सकती क्योंकि वे अपने में गुण ज्यादा मानते हैं, गुरु में कम, उन्हें अपनी बुद्धि का अभिमान ज्यादा है। गुरु की कृपा पर श्रद्धा कम है।

'गुरु दीपक गुरु चान्दनों गुरु बिन घोर अंधार।
पलक न विसरूं तुम भणी गुरु मुझ प्राण आधार ॥'

संसार में जितना प्रकाश है, वह गुरु कृपा से ही मिलता है। घर में समस्या का अंधेरा हो, गुरु दीपक बनकर आएंगे। खुले संसार में निराशा का अंधेरा हो, गुरु सूर्य चांद बनकर रोशनी प्रदान करेंगे। बस जरूरत है उन्हें पल भर के लिए भी नहीं भूलना।

परम पूज्य गुरुदेव व्याख्यान वाचस्पति श्री मदनलाल जी म. का दृढ़ अनुशास्ता श्री छोटे लाल जी महाराज, बहुसूत्री श्री नाथूलाल जी म. के

साथ जयपुर में चातुर्मास चल रहा था। उस समय उनकी दीक्षा पर्याय छोटी थी। एक रोज सामूहिक वाचना चल रही थी। उस वाचना में उन्हें एक पाठ मिल गया, जिसकी विशेष आराधना करने से 'देवसिद्धि' होती है। उन्होंने वह पाठ याद कर लिया और उस पाठ की आराधना की जो विधि थी, वह भी उन्होंने समझ ली। रातों को जाग-2 कर उस पाठ का जाप प्रारंभ कर दिया। लंबा समय हो गया और उन्हें संकेत मिलने लग गए कि अब शीघ्र ही पाठ सिद्ध होने वाला है। मन में एक विशेष प्रसन्नता का भाव उमड़ने लगा। एक दिन अपने गुरुदेव श्री बहुसूत्री जी म. के चरणों में बैठे थे कि निश्छल भाव से बोले—गुरुदेव, आपकी कृपा से मेरा लक्ष्य पूरा होने वाला है। गुरुदेव ने पूछा—'कौन सा लक्ष्य।' उन्होंने कहा, 'मैं फलां पाठ की साधना कर रहा हूं, और लक्ष्य सिद्धि में कुछ ही दिन शेष हैं, फिर आपके इस लघु शिष्य को देवसिद्धि हो जाएगी।'

पूज्यपाद बहुसूत्री श्री नाथूलाल जी म. हल्के से मुस्कराए। 'कहने लगे, मदन जी, साधु को आत्मा वश में करनी है, देवता को वश में करके क्या करोगे? देवसिद्धि से साधु का जीवन भटक सकता है, वह रागद्वेष के चक्कर में फंस सकता है, जबकि आत्मा को वश करने वाला साधु सदा दुःख-द्वंद्वों से, रागद्वेष से मुक्त रहता है। इसलिए मेरी तो यही सलाह है कि इस पाठ को अभी छोड़ दो, इस दिशा में जाना ही नहीं है।

इतने विनयवान थे हमारे गुरुदेव कि उन्होंने बिना ननु-नच किए अपने गुरुओं की आज्ञा को शिरोधार्य कर लिया। उन्हें तो गुरुओं के निषेध में भी फायदा नजर आया। यदि उनमें अभिमान या स्वार्थ होता तो उस आज्ञा का उल्लंघन भी कर सकते थे या उन्हें अपने पाठ का लाभ बताने लग जाते। लेकिन नहीं, उन्होंने तो हमेशा गुरुओं की आज्ञा मानने में श्रेय समझा था।

शुरू में जो-2 बातें बताई थी, उनमें एक बात यही थी कि गरूर से सिर ऊंचा न करो। यदि हम गुरुओं के आगे भी गरुर की बातें करेंगे

तो हमारा तीन काल में भी कल्याण नहीं हो सकता है। लेकिन आज, जिस किसी शिष्य को दो अक्षर ज्यादा आ जाते हैं, वही गुरुओं का सामना करने को उतारू हो जाता है। दस बीस श्रोता या भक्त बन जाते हैं तो अपने आपको खुदा मानने लगता है। उन्हें न ज्ञान हजम होता है, न यश हजम होता है। जैसे मंदाग्नि वाले आदमी का हाजमा इतना दुर्बल हो जाता है कि न उसे मीठा हजम होता है, न चिकना, ऐसे ही अहंकारी शिष्य का दिमाग भी बदहजमी का शिकार हो जाता है।

जीवन की योग्यताओं को उभारने के लिए बताए गए 12 सूत्रों में पहला सूत्र था—किसी से नफरत न करो। नफरत करने वाले का दिल सदा दुर्भाव से भरा रहता है। उसकी आंखों में लावा सुलगता रहता है, भाषा में असभ्यता अशिष्टता के शब्द होते हैं। जब कि नफरत को जीतने वाले का चित्त सदा शान्त रहता है, भाषा संतुलित और व्यवहार मधुर रहता है।

प्रधानमंत्री बनने के बाद नेहरू जी सन् 1950 में प्रथम बार लंदन गए। वहां उनकी मुलाकात चर्चिल से भी हुई। चर्चिल अपने जमाने में भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन का सख्त विरोधी रहा था। उसे गांधी और नेहरू जैसे लीडरों से सख्त एलर्जी थी। जब तक वह इंग्लैण्ड का प्रधानमंत्री रहा तब तक उसने भारतीय नेताओं को नजरअंदाज करके रखा। बहुतों को तो जेलों में कैद भी किया। लेकिन नेहरू जी फिर भी उनसे मिले। चर्चिल को पुरानी बातें अब भी याद थी। उस मुलाकात में चर्चिल ने एक बात नेहरू जी से पूछ ली—'आपने अंग्रेजों की जेल में कितने दिन बिताए?' नेहरू जी बोले—लगभग दस वर्ष। चर्चिल ने फिर पूछ लिया—'तब तो आपको हमसे घृणा करनी चाहिए।' तब नेहरू जी ने जो उत्तर दिया, वह सुनने और समझने के लायक है। उन्होंने कहा था, 'ऐसी बात नहीं है। हमने ऐसे नेता के अधीन काम किया है जिन्होंने हमें दो बातें सिखाई—किसी से डरो मत और किसी से घृणा मत करो। हम आपसे तब डरते भी नहीं थे इसीलिए अब घृणा भी नहीं

करते।' चर्चिल सुनकर नतमस्तक हो गया। बात तो वही सही है जिसे समर्थक ही नहीं आलोचक भी सिर झुकाकर स्वीकार करें।

गुणेहि साहू अगुणेहिऽसाहू गिण्हाहि साहू गुण मुंचऽसाहू।[1]

अच्छे गुणों को जो ग्रहण करता है वह साधु है और अगुणों को ग्रहण करने वाला असाधु है। भगवन्तों का संदेश है कि हे साधक, तुझे गुण लेने हैं और दुर्गुण छोड़ने हैं।

किसी-2 आत्मा में इतनी गुणग्राहकता होती है कि वह गलत से गलत जगह से भी अच्छाई ही लेता है, बुराई नहीं। हकीम लुकमान के बारे में मशहूर है कि उसके जमाने में वह बहुत श्रेष्ठ इंसान माना जाता था। हालांकि बचपन से गरीब था। मां-बाप ने उसे एक अमीर जमींदार को बेच दिया था। मालिक ने उसके सद्गुणों के कारण आजाद कर दिया था। उसने भी गहन अध्ययन और परिश्रम के बलबूते पर संसार को कई सूक्ष्म रहस्य दिए और लंबे समय तक उसकी तूती बोलती रही। उसके ऊंचे व्यक्तित्व से प्रभावित कुछ लोगों ने उससे पूछा कि लुकमान तुम इतने बुद्धिमान कैसे बने? उसने कहा, मैं तो बुद्धिहीन, बेअक्ल और मूर्ख लोगों की कृपा से कुछ बुद्धिमान, अक्लमंद और स्याना बन सका हूं। उत्तर सुनने वाले को बड़ा अटपटा लगा तो लुकमान ने खुद ही स्पष्ट किया। मैंने अपना अधिकांश समय ऐसे लोगों के बीच बिताया जो प्रायः मूर्खतापूर्ण कार्य करते थे, फिर रोते और पछताते थे। मैं बस यहीं से शिक्षा ले लेता था कि मैं ऐसा कार्य नहीं करूंगा जिससे मुझे पछताना पड़े। वे भूलें मैंने नहीं की जो वे करते थे इसलिए मैं अक्लमंद कहलाने लगा। लेकिन हकीकत ये है कि ये अक्ल भी मुझे उनसे ही मिली थी।

बिल्कुल ऐसे ही एक बार Tolstoy ने कहा था कि मुझे दया का सच्चा पाठ बूचड़खानों में सीखने को मिला है। वहां मैं जब-2 गया तब-2 वहां पशुओं पर होने वाले क्रूर अत्याचारों को देखकर दहल गया, इसलिए मेरे लिए दया-करुणा की पाठशाला बूचड़खाने रहे हैं।

1 दशवैकालिक 9 अध्ययन 3 उद्देश्क 11 गाथा

एक चोर चाहता था कि जिस प्रकार मैं अपनी विद्या में माहिर हूं ऐसे ही अपने पुत्र को भी महारत सिखाऊं। एक दिन वह अपने पुत्र को चोरी कराने हेतु साथ ले चला। आधी रात का समय था। पहाड़ी पर चढ़ते-2 पिता ने अपनी कलाकारी की डींग हांकी और कहा—बेटा, मेरी होशियारी देख, इस घर में मैंने 13 बार चोरी की है और एक बार भी नहीं पकड़ा गया। पिता अपने बारे में, अपनी कला के बारे में कुछ और आगे बताता, उससे पहले ही पुत्र ने पूछा लिया—'पिता जी, जिस घर में आप तेरह बार चोरी कर चुके हो, उस घर में अब भी उजाला है, उस घर में कोई घाटा नहीं हुआ, जबकि हमारे घर में हर रोज चोरी का धन आता है तो भी वहां अंधेरा ही अंधेरा रहता है।' पिता को हां भरनी पड़ी। हां, 'बेटा, वो तो है ही।' पिता चाहता था कि पुत्र इन फिजूल की बातों में न पड़कर आगे चले और किसी घर में चोरी करे। लेकिन पुत्र ने अपना फैसला दे दिया 'नहीं पिताजी, चोरी करने के बाद भी घर में अंधेरा ही रहे तो मैं चोरी नहीं करूंगा।' पिता सिहर तो उठा पर उसे कहना पड़ा, ठीक है कि चोरी अंधेरा ही देती है। तो देखिए, चोर का बेटा भी विचारों से गुणवान बन सकता है। गुण किसी एक खानदान, मुल्क और मिल्लत[1] की बपौती नहीं है, इसका कोई भी हकदार हो सकता है। शूद्र कुल में उत्पन्न हरिकेशी मुनि इतने महान बने कि उतराध्ययन सूत्र का 13वां अध्ययन सारा का सारा, उनके नाम समर्पित हो गया। पहली तीन गाथाओं में उनका गुण वर्णन करते हुए कहा है।—

'सोवाग कुल संभूओ गुणुत्तर धरो मुणी,
हरिएसबलो नाम आसी भिक्खू जिइंदिओ'
इरिएसण भासाए उच्चार समिइसु य,
जओ आयाण निक्खेवे संजओ सुसमाहिओ।

---

1 राष्ट्र

मण गुत्तो, वय गुत्तो काय गुत्तो जिइंदिओ,
भिक्खट्ठा बम्ह इज्जम्मि जन्नवाडे उवट्ठिओ ॥

हरिकेशी मुनि वेशक चाण्डाल कुल में पैदा हुए थे लेकिन फिर भी श्रेष्ठ गुणों के धारक थे। ईर्या समिति आदि पांचों समितियों के तथा तीनों गुप्तियों के धनी थे, वे सुसमाधिवान थे और जितेन्द्रिय भी थे। जैन धर्म में जाति या कुल की महानता न मानकर आत्म गुणों की महानता को स्वीकार किया है। भगवान् महावीर स्वामी ने, इस अवसर्पिणी काल के 24 तीर्थंकरों ने तथा अनादिकाल से लेकर अब तक हुए अनन्त तीर्थंकरों ने हर आत्मा में अनन्त गुणों का अस्तित्व बताया है। मनुष्य मात्र की बात नहीं है, प्राणिमात्र 'आत्मा' की दृष्टि से एक है। इसलिए हमें जाति कुल आदि के आधार पर किसी को छोटा बड़ा मानने की जरूरत नहीं है। किसी भी जाति या कुल का व्यक्ति महान् या क्षुद्र हो सकता है। ज्ञान दर्शन और चारित्र जिस आत्मा में प्रकट होने लगे वही महान् है। रत्नत्रय में पहना रत्न ज्ञान को माना है जिसके लिए किसी ने लिखा है–

Knowledge is power, Knowledge is light, Knowledge is the best virtue. ज्ञान एक शक्ति, एक रोशनी और एक सर्वोच्च गुण है। जिसे अपने लक्ष्य का ज्ञान हो जाता है उसका अंदर का ढांचा ही बदल जाता है, उसकी भाषा, उसका व्यवहार सामान्य मानवों से जुदा हो जाता है। जैसे कि दक्षिण भारत के संत बेमना के बारे में वर्णन आता है। एक बार वे सड़क के किनारे बैठे थे। सड़क का वह किनारा भी कोई साफ सुथरी जगह नहीं था, कूड़े का ढेर था। वहीं बैठकर वह भजन करने बैठ गए। हालांकि वे भी राजघराने के वंशज थे। उनका भाई आंध्र प्रदेश का शासक था। मगर उन्हें आत्म ज्ञान हो गया या कहो भक्ति में आनन्द आ गया। सब कुछ छोड़ दिया और मस्ती में भजन गाने लगे। तभी उधर से राजा की सवारी निकली। राजा 12 कहारों वाली पालकी में सवार था, उसने कूड़े के ढेर पर बैठे बेमना

को देखा तो रोने लगा। उधर बेमना भी राजा को देख रो पड़ा। राजा ने पूछा, 'बेमना, तुम क्यों रोते हो?' बेमना ने पूछ लिया, 'पहले आप बताओ राजन्, आप क्यों रोते हो?' राजा ने कहा, 'मेरे रोने का कारण ये है कि हम दोनों सगे भाई हैं, पर हमारी स्थिति कितनी भिन्न है? मैं राजा हूं अतः पालकी में बैठा हूं, जबकि तुम कूड़े के ढेर पर बैठे हो? बेमना कुछ गंभीर होकर बोला, 'मैं इसलिए रो रहा हूं कि अगले जन्म में जब तुम इन बारह कहारों की पालकी को ढो रहे होगे, उस समय मैं आनन्द की अमृत वाहिनी में डुबकियां लगा रहा होऊंगा।' यह थी बेमना की ज्ञानदृष्टि, जिसके कारण वह सम्राटों से भी ऊपर उठ चुका था। उसके पास बड़ी शक्ति थी, उच्चतर प्रकाश था। ज्ञानदृष्टि संपन्न जीवन न दुःखी होता है और न दूसरों को दुःखी करता है। वह अंदर में झांकता है, उसका सुख अंदर से फूटता है क्योंकि सब कुछ अपने अंदर ही होता है।

'स्वयं, स्वयं को खोजो तुम ही और कौन खोजेगा तुमको
जिसने खोजा उसने पाया तोड़ा जिसने पर के भ्रम को'
'जो अपने को खोज न पाया, वह क्या खोजेगा ईश्वर को
जो कि तलैय्या तैर न पाया वह क्या तैरेगा सागर को'
'निश्चय नय से नर ईश्वर में कुछ भी नहीं भेद की रेखा
कभी न ईश्वर हो पाएगा जिस विमूढ़ ने अन्तर देखा'

अर्थात् जो विमूढ़ आदमी ईश्वर और नर में अन्तर या फर्क मानता है वह ईश्वर पद तक नहीं जा सकता।

'ईश्वर होने हेतु मनुज को और न कुछ भी करना होगा
निज पर से अपनय आच्छादित पर-भावों का हरना होगा'

अपनी आत्मा के ऊपर अशुद्ध ज्ञान या मिथ्या ज्ञान से जो परभावों का पर्दा आ गया उसको हटाते ही यह आत्मा शुद्ध, बुद्ध और निर्मल परमात्मा बन जाती है। यही भाव अगले मुक्तक में भी झलक रहा है—

'बीज, बीज ही नहीं, बीज में तरुवर भी है
मनुज, मनुज ही नहीं, मनुज में ईश्वर भी है'

उर्दू के एक शायर ने कहा है—

तू तुझको न जाने तो जुदा ही जुदा है,
तू तुझको पहचाने तो खुदा ही खुदा है।

हम लोगों की यही विडंबना है कि सारे संसार की जानकारी तो कर लेते हैं पर अपना स्वरूप जानना भूल जाते हैं।

बड़ी प्रसिद्ध कहानी है—'दस मित्र नदी स्नान के लिए गए। मजे से स्नान किया और नदी से बाहर आ गए। एक ने सुझाव दिया, यार हम दस साथी आए थे, सब नदी से बाहर सुरक्षित तो आ गए ना? जरा गिनती कर लो। सबको उसकी बात जंची। उसने अपने सामने सबको खड़ा किया और गिनती की—1, 2, 3, 4,.....9। एक मित्र तो नदी में ही डूब गया लगता है। दूसरे ने भी गिन कर देखा 1, 2, 3.....और 9। यों करते-2 दसों ने 9 तक ही गिनती की। किसी एक को नदी ने निगल लिया है। किसी को ये पता नहीं लगा। रोने लगे। तभी एक समझदार आदमी आया। उसने सारा माजरा पूछा और समझ गया। उसने कहा, भाइयों, गिनने वाला अपने को भूल रहा है, बस औरों को गिन रहा है। और यही आपके रोने का, विलाप का असली कारण है। **'वियाणिया अप्पगमप्पएणं'** अपने आपको जानो तो काम बनेगा। सारा दुःख मिट जाएगा। इसी अज्ञान के अंधकार में डूबा हुआ यह जीव असंस्कृत जीवन बिता रहा है। विकृतियों का पुञ्ज बना हुआ है। विषय विकारों ने इस जीवन को दुःख से पूर्ण किया हुआ है, जैसे आत्मज्ञान प्रगट होगा, विषय विकार कम होंगे, दुःख कटेंगे और यह आत्मा इस लोक-परलोक में सुखी होगी।

4. क्रोधशमन की विधि

साहू गोयम पण्णा ते छिन्नो मे संसओ इमो।
नमो ते संसयातीत सव्व सुत्त महोदही ॥

पूज्य गुरुदेवों की कृपा से जो कुछ सीखा है कुछ देर आपके समक्ष रखेंगे। भव्य जीव धर्म आराधन करें, रत्नत्रय को उज्ज्वल करें, यही हमारी कोटिशः मंगलकामनाएं हैं।

तीर्थंकर भगवंतों की वाणी–

'मा य चण्डालियं कासी बहुयं मा य आलवे,
कालेण य अहिज्जित्ता तओ झाइज्ज एगओ ॥'[1]

भगवान् की अंतिम वाणी उत्तराध्ययन सूत्र में अध्यात्म साधना का सार निचोड़ा हुआ है। इसकी एक-2 गाथा मंगलकारी है। प्रथम अध्ययन की दसवीं गाथा में भगवान् के चार मुख्य संदेश हैं। हे साधक,

1. तू चाण्डालता के स्तर का क्रोध मत आने देना,
2. व्यर्थ की बातें बनाने से बचे रहना,
3. जितनी समय की उपलब्धता हो उतनी ही स्वाध्याय करते रहना,
4. स्वाध्याय के अनन्तर एकांत में ध्यान करना।

इन चारों में से पहले संदेश पर गौर करना बेहद जरूरी है क्योंकि क्रोध मानव जाति की बहुत बड़ी समस्या बन चुका है। लगभग सभी परिवारों की ये शिकायत है कि क्रोध के कारण हमारे प्रेम-संबंध बिखरते जा रहे हैं। क्रोध ने घरों को नरक बना रखा है। किसी को किसी की बात सुहाती नहीं है। न किसी को कहना आता। एक बार जहन में गुस्सा समा जाए, बार-2 कोशिश करने पर भी नहीं निकलता। मनमुटाव जल्दी ही हो जाता है और मेल-मिलाप के सूत्र टूट जाते हैं।

1 उत्तराध्ययन 1 उध्ययन 10 गाथा

बड़ो को डर लगा रहता है कि छोटों को कुछ कहा तो उबल पड़ेंगे। छोटों को भी आशंका रहती है कि बड़े हमारी बात का सही जवाब देने की बजाय भड़ास निकालने लगेंगे। श्रीमान् को खतरा है कि जैसे ही घर जाऊंगा, श्रीमती का पारा सातवें आसमान पर होगा और श्रीमती जी भी डरी-सहमी रहती है कि उन्हें कुछ टोका तो उबल पड़ेंगे। कैसी स्थिति हो गई है? हम शिक्षा, विज्ञान, तकनीक के नए-2 आयाम खोलते जा रहे हैं। जबकि अपने जज़्बातों के ऊपर हमारा अंकुश नहीं रहा। संतों गुरुओं के पास ढेर सारी सामयिकें करने वाले, लंबी-2 मुंह पत्ती लगाने वाले, व्रत बेले तेले अठाई जैसी बड़ी-2 तपस्या करने वाले श्रावक-श्राविका अपने घरों में जब कलह का वातावरण बनाते हैं, तब विचार आता है, क्या फायदा है ऐसी सामायिक करने का, माला-पाठ करने का, अठाइयां करने का। धूल पड़े ऐसे थोथे क्रिया कांडों पर। केवल इनसे काम नहीं चलेगा, अपनी आदतों को भी सुधारना होगा। तुम्हारे कारण, तुम्हारी बहू-बेटी अंदर ही सिसकती है, रोती है तो तुम्हारी माला सामायिकें करनी बिल्कुल बेकार हैं। पहले अपने इस चाण्डाल को कंट्रोल करो।

आदि शंकराचार्य ने पहले नर्मदा नदी के तट पर अपने गुरुदेव गोविन्द भगवत्पाद से वेदांत का पूर्ण प्रामाणिक ज्ञान पाया। फिर पंडितों की नगरी काशी पहुंचे। वह तरुण संन्यासी अपने कुछ शिष्यों को लेकर तपती दोपहरी में गंगातट की ओर स्नान, संध्या वंदनादि के लिए चल दिया। तभी सामने से एक चाण्डाल चार कुत्ते लिए हुए आ गया। शंकराचार्य ने झिड़कते हुए कहा, 'दूर हट जा।' मगर वह तो उसी तरह ढीठ बनकर खड़ा रहा। शंकराचार्य का क्रोध और भड़क उठा। 'अरे चाण्डाल, एक तरफ हो जा।' उसने हटने की बजाय उन्हीं से सवाल पूछ लिया 'उपनिषद् स्पष्ट कह रही है कि एक, अद्वितीय, शुद्ध सत्य-ज्ञान-आनन्द रूप अखण्ड ब्रह्म के सिवा है ही कुछ नहीं, फिर भी आपकी भिन्नता की बुद्धि बनी हुई है। आश्चर्य है। हे विद्वान् यतिवर, यह तो बताइए, दूर रहने की बात कहकर आप एक देह को दूसरे देह से

दूर कराना चाहते हैं या एक आत्मा को दूसरी आत्मा से। आत्मा में तो ब्राह्मणत्व और चाण्डालत्व ये भेद होता नहीं। क्या गंगा में प्रतिबिंबित सूर्य और शराब में प्रतिबिंबित सूर्य में कोई अंतर है? समस्त शरीरों में जब एक ही पुरुष बस रहा है तब उसे भुलाकर आप यह कह रहे हैं कि मैं पवित्र ब्राह्मण हूं और तू अपवित्र चाण्डाल। यह कैसी बुद्धि है आपकी? तथा यह भी बताइए कि आप क्रोध करते समय स्वयं चाण्डाल नहीं हो गए हैं?'

शंकराचार्य क्षण भर के लिए स्तब्ध रह गए। उन्हें सत्य का विशुद्ध साक्षात्कार हुआ। फिर उन्होंने सिर नमाकर उस चाण्डाल को वंदना की। उनके वंदना के भाव इस तरह थे 'आप धन्य हैं, इस भेद भावना को मैं इसी क्षण छोड़ रहा हूं। सब कुछ आत्मा ही है यह अभेद बुद्धि जिसमें है, वह चाहे ब्राह्मण हो या चाण्डाल, वह मेरा गुरु है। ऐसी मेरी दृढ़ निष्ठा है। इन शब्दों के उच्चारण के साथ ही चाण्डाल अदृश्य हो गया और वहां साक्षात् शिव खड़े दिखाई दिए। शंकराचार्य जी के शिव स्तुति में बनाए गए वे 5 श्लोक आज भी 'मनीषा पंचक' के रूप में प्रचलित हैं।

श्री शंकराचार्य तो आत्म द्रष्टा थे जिन्हें अपनी भूल तत्काल नजर आ गई वर्ना आम आदमी सालों साल, जन्मों-जन्म अपनी भूल को नहीं स्वीकारता और दूसरों को अपराधी समझता हुआ उन पर रोष करता जाता है। चण्डकौशिक सर्प का जीव तीन भव पहले गुरु पद पर आसीन महाव्रती साधु था। उसके शिष्य ने गुरु को टोक दिया कि गुरुदेव, आपके पैर के नीचे मेंढक मर गया है, इसका प्रतिक्रमण कर लो और प्रायश्चित ले लो। गुरु तो आपे से बाहर हो गए। शिष्य को मारने दौड़े। मकान के खंभे से टकराकर काल कवलित हो गए और कुलपति के आश्रम में पुत्र रूप से उत्पन्न हुए। क्रोध के संस्कार पिछले जन्म से लेकर आने से उसने आश्रम में भयंकर वातावरण बना दिया। आश्रमवासी सब छात्र उसे 'चण्ड कौशिक' कहने लगे। जैसे-2 चण्ड

कौशिक बड़ा होने लगा, उसका क्रोध विकराल रूप धारण करने लगा। धीरे-2 सारा आश्रम वीरान हो गया। वहां भी अपने फरसे की मार से मर गया और कनखल के पास दृष्टि विष सांप बना। भगवान् महावीर की कृपा से जीवन बदला और क्रोध भी छोड़ा और विष भी। वैसे क्रोध और विष में फर्क भी क्या है? विष शरीर का घात करता है जबकि क्रोध आत्म गुणों का।

लोग कहते हैं कि हमें गलत बात पर क्रोध आता है। पर सवाल तो यही है कि आपको दूसरे की बात गलत ही गलत नज़र आती है। क्या अपनी बात कभी गलत नज़र आई और उस पर कभी क्रोध किया?

मैं आपको छोटे-2 पांच प्रश्न देता हूं। आप इनका हल खोजे। मुझे पक्का यकीन है कि यदि आप ईमानदारी से उन प्रश्नों का हल निकाल लेंगे तो क्रोध का स्थायी समाधान मिल जाएगा। न आपको बार-2 पछताना पड़ेगा, न आपके कारण माहौल खराब होगा। पहला प्रश्न—मैं क्रोध किस लिए कर रहा हूं? अर्थात् क्या मेरे क्रोध के पीछे कोई कारण भी है या मैं बिना कारण ही क्रोध में जल-भुन रहा हूं। यदि आपको लगता है कि मेरा क्रोध सकारण है तो दूसरा प्रश्न है क्या मेरे क्रोध का कारण सच्चा है, यदि कारण सच्चा नहीं है तो क्रोध क्यों करूं। और यदि आपको लगता है कि कारण सच्चा है तो तीसरा प्रश्न है 'मेरे क्रोध से दूसरों पर क्या प्रभाव पड़ेगा? अर्थात् जिन कारणों को मैं कारण मान रहा हूं क्या वे कारण हट जाएंगे। यदि नहीं, तो मैं शान्ति क्यों खोऊं? चौथा महत्त्वपूर्ण प्रश्न—क्या क्रोध करने से परिस्थिति में परिवर्तन आ सकेगा? इस प्रश्न का यदि आपने उत्तर ढूंढ निकाला तो सारे प्रश्न हल हो जाएंगे। फिर पांचवे प्रश्न की भी जरूरत नहीं पड़ेगी। दरअसल, पांचवा प्रश्न है ही नहीं। प्रश्न तो मैंने वैसे ही बना दिया है। वह तो एक फैसला है। जो हर आदमी के सामने प्रश्न चिह्न बनकर खड़ा हुआ है। यदि क्रोध से परिस्थिति में अनुकूल परिवर्तन नहीं आ

सकता तो पांचवी आखिरी बात तो ये रह गई कि, यदि नहीं, तो फिर मैं व्यर्थ में क्रोध क्यों करूं?

आदमी को सोचने का ढंग ही बदलना है फिर उसके लिए क्रोध पर विजय प्राप्त करना भी कठिन नहीं है। जिंदगी में सुख दुःख तो आएंगे ही, उन्हें रोक सकना किसी के वश की बात नहीं है मगर सुख-दुःख पर अपनी प्रतिक्रिया को रोका जा सकता है।

Lifei sa p endulumb etweenj y a ds o rw s.

एक नेता जी भाषण दे रहे थे। भाषा बिल्कुल शिष्ट और सभ्य थी। लेकिन एक श्रोता यों ही जला भुना बैठा था। सभा का माहौल खराब करने के इरादे से खड़ा हो गया और पूछने लगा, 'हमें बताइए कि गधे के शरीर पर कितने बाल होते हैं?' वक्ता ने शांत भाव से कहा—'यदि महाशय, मंच पर आने की कृपा करें तो अभी बता दूंगा।' क्रोध की बजाय हंसी में बात को बदल लेना बहुत बड़ी कला है।

आज तक मानव ने हर चीज हजम की है। खीर हलवा हजम कर सकता है, दूध चाय हजम हो जाता है, शर्बत-शिकंजवी हजम हो सकती है लेकिन गम को, अपमान को, हज़म करना सबसे ज्यादा मुश्किल काम है। समुद्र मंथन के बाद एक समस्या खड़ी हुई कि अमृत तो देवता ले गए। मगर हलाहल जहर कौन पीए? उस समय केवल शिवशंकर ही हलाहल विष को पीने के लिए तैयार हुए। अमृत पीने वाले देव होते हैं तो जहर पीने वाले महादेव होते हैं।

आजादी से पूर्व जब ये निश्चित सा हो चला था कि देश को स्वतंत्रता मिलने वाली है तब संविधान के निर्माण के लिए Constituent Assembly का गठन किया था। कांग्रेस सहित देश के सब दलों के नेता उसके सदस्य बने। डॉ. राजेन्द्र प्रसाद उसके President थे। जब-2 बैठक होती तब-2 राजेन्द्र बाबू एवं नेहरू जी का किसी न किसी मुद्दे पर विवाद हो जाता। नेहरू जी जोशीले ज्यादा थे और अपनी बात मनवाने

में जिद्दी भी। Chair की गरिमा की सुरक्षा नहीं रखते थे। राजन बाबू काफी दिनों तक झेलते रहे। पर नेहरू जी का रुख नहीं बदला। राजेन्द्र बाबू ने थक हार कर एक दिन त्याग-पत्र लिखा और गांधी जी को थमा दिया। कह दिया कि नेहरू जी के साथ रहकर काम करना मेरे लिए सरल नहीं है। गांधी जी परेशान हुए। बड़ी मुश्किल से तो आजादी का सपना पूरा होने का वक्त आया है। फिर भी गांधी जी ने राजन् बाबू को पास बैठाया और कहने लगे, 'मेरे पास शिवशंकर तो एक ही है, यदि तू भी हिम्मत छोड़ देगा तो इस देश का क्या होगा?' गांधी जी के इन शब्दों ने ही राजेन्द्र बाबू का मन बदल दिया और त्याग पत्र को फाड़ दिया।

'शिव बनने की चाह अगर है, जहर हलाहल पीना सीखो
औरों का अवसाद पान कर, नीलकंठ बन जीना सीखो
मणिमंडित कलधौत धाम तज, पर्णकुटी की तपस्थली में
रजकण विछी शरशय्या पर सुख निद्रा रत होना सीखो
सुरभिसरणि सूपोदन तजकर मधु मेवा का छोड़ कलेवा
लवणहीन रूखी रोटी में षड्रस स्वाद संजोना सीखो
अपने डर के अनुतापों को समझो अग्नि परीक्षा अपनी
दीन दुःखी निर्बल निरीह के दुःख से विगलित होना सीखो
सुरासुन्दरी से विरक्त हो वैभव का अनुराग त्याग कर
पद मद का भ्रम जाल काटकर सादा जीवन जीना सीखो
सत्य अहिंसा सदाचार के पावन संस्कार अपनाकर
वर्ग विहीन समाज सृजित कर स्नेह सुधारस पीना सीखो।'

संसार में वही लोग इतिहास के पन्नों पर अंकित हुए हैं जिन्होंने अपने जज्बातों को जीता है। जो आदमी गम नहीं खा सकता, प्रतिकूलताएं नहीं सह सकता वह न घर को बसा सकता है, न देश को चला सकता है, न संघ की रक्षा कर सकता है। तोड़ने में कितनी देर लगती है, एक ठोकर मारी और बना बनाया सब ढेर।

किसी निज़ाम को बनाना हो तो होश की जरूरत है।
किसी निज़ाम को गिराना हो तो जोश की जरूरत है।

घर के 16 सदस्य हों या 100, यदि सभी के सभी गुस्सैल है, तू-तड़ाक करने वाले है, तो वह घर कल की बजाय आज बिखर जाएगा। पर यदि उनमें एक भी ठंडी तबीयत का है, सुरक्षित दिमाग का है। सबकी सुन लेता है, सुनकर हजम कर लेता है तो वह घर सुरक्षित रहेगा। आप सोचते होंगे कि सेना में भर्ती होने वाले युवक सारे के सारे जोशीले होते होंगे, ये ख्याल सहज ही बन जाता है क्योंकि सेना में तो हरदम मारकाट, धाँय-2 ही होती है। लेकिन वहां भी एक बात ध्यान देने लायक ये है कि सेना के सिपाही, रंगरूट कितने ही जोशीले हो मगर उनके कमांडर टिके हुए मिजाज के होते हैं। बड़े ओहदों पर शांतचित्त के लोगों को बैठाया जाता है।

'काबू रख कुछ जोश को भूल मत मर्याद को,
सर्द लोहा काट देता है, गर्म फौलाद को।'

बुद्ध के संघ का विस्तार हो रहा था। बुद्ध के सान्निध्य में प्रशिक्षित होकर बहुत सारे भिक्षु अलग-2 इलाकों में बुद्ध धर्म का प्रचार करने निकल पड़े थे। जैसे भगवान् महावीर के साधना काल में लाढ़ देश बहुत अनार्य संस्कारों वाला माना गया है। बुद्ध के संघ के लिए 'सूना प्रान्त' वैसा ही कठोर और अनार्य माना गया था। वहां जाने का किसी ने उत्साह नहीं दिखाया। एक दिन बुद्ध के शिष्य पूर्ण ने निवेदन किया कि तथागत, 'मैं सूना प्रान्त में धर्म प्रचार के लिए जाना चाहता हूं। आपकी अनुमति चाहिए।' बुद्ध ने देखा कि ये भिक्षु इतना पढ़ा-लिखा भी नहीं है, चुस्त भी नहीं है, फिर नई जगह जाकर कैसे कामयाब होगा? क्योंकि साधारण आदमी तो पढ़े-लिखों को ही तरज़ीह देते हैं चाहे वे पढ़े लिखे जानते कुछ भी न हों। ऐसा हुआ कि हरियाणा के एक गांव में चौधरी के पास दो कटड़े थे—एक मोटा और दूसरा पतला मरियल सा। उसके

घर दो खरीददार आए। भाव पूछने लगे तो चौधरी बोला—'मोटा दो सौ का और पतला तीन सौ का मिलेगा।' व्यापारी सोच में पड़ गया, ऐसा क्यों? इसमें क्या खास बात है कि पतले के 100 रुपये ज्यादा मांग रहा है। चौधरी बोला, 'पतला कटड़ा दसवीं पास हो गया क्योंकि इसने मेरे छोरे का दसवीं जमात का सर्टिफिकेट निगल लिया है ईब यू मैट्रिक की डिग्री ले रहा है।'

आजकल भी बहुत सारे साधक बस डिग्रियों के बलबूते पर ज्ञानी बने हुए हैं। जीवन में चाहे क ख न आता हो पर डिग्री तो है। उन डिग्रियों ने ही साधना का बंटाधार किया है। तो खैर, बुद्ध ने पूछा, 'वहां के लोग बहुत कठोर हैं तुम्हारी निंदा करेंगे तो तुम्हें कैसा लगेगा?' पूर्ण कहने लगा 'मैं समझूंगा, मुझे थप्पड़, घूंसे तो नहीं मार रहे। बुद्ध ने बात को और आगे बढ़ा दिया, 'यदि वे तुम्हें थप्पड़ घूंसे भी मार दें तो क्या करोगे? पूर्ण फिर बोला, 'मैं मानूंगा कि ये थप्पड़ ही तो मार रहे हैं, पत्थरों और डंडों से तो नहीं मार रहे।' बुद्ध ने वो बात भी कह दी कि उनका स्वभाव बहुत उग्र है वे डण्डों और पत्थरों से भी वार कर सकते हैं, तब तुम क्या करोगे? बड़े शांत भाव से पूर्ण बोला, 'प्रभो, मैं सोचूंगा कि कम से कम वे मुझे तीर तलवार से तो नहीं मार रहे। बुद्ध बोले, उनका कोई भरोसा नहीं, कुछ लोग तीर तलवार से भी प्रहार कर सकते हैं। फिर तुम्हारी क्या प्रतिक्रिया रहेगी। उसने झट उत्तर दिया—शास्ता, मैं समझूंगा कि ये मुझे जान से तो नहीं मार रहे। 'अच्छा यदि वे तुम्हें मार ही दें तो? 'तो प्रभु, मैं उनका उपकार मानूंगा क्योंकि आपके पास रहकर मैं इतना तो जान ही गया हूं ये संसार दुःख है, शरीर रोगों का घर है, इस शरीर को छुड़वाकर वे मेरा उपकार ही कर रहे हैं।' बुद्ध प्रसन्न हो गए। उन्हें अहसास हो गया कि यह भिक्षु असीम धैर्य का धनी है। यह हर घटना को सकारात्मक ढंग से लेना जानता है। अतः ये कभी क्रोध क्षोभ का शिकार नहीं होगा। ये सच्चा साधु है। इसलिए उनके मुख से निकला, 'तुम कहीं भी जाओ, धर्म तुम्हारी रक्षा करेगा।' किसी के कठोर वचनों को सुनना, किसी के प्रहारों को

सहना कितनी बड़ी तपस्या है। आज हमारे समाज में आहार के त्याग के साथ तपस्या करने वाले बहुत मिलेंगे, लेकिन किसी के दुर्वचनों को सुनकर शांति, क्षमा, सहिष्णुता रखने वाले कितने हैं? अकाल पड़ा हुआ है ऐसे तपस्वियों का।

कैसी विचित्र विडंबना है हम लोगों की कि किसी अनजान आदमी की तरफ से अपमान हो जाए तो एक बार बर्दाश्त कर लेंगे मगर अपने ही माता-पिता या गुरुजन कुछ कह दें तो क्रोध से लाल-पीले हो जाएंगे। गुस्से में हम पूरी तरह रचे-बसे हैं।

तीन गप्पी दोस्त अपने-2 बारे में डींग हांक रहे थे। पहले ने कहा, मैं बेहद गर्म चाय पीता हूं, अंगीठी से उतरते ही केतली के मुंह लगा लेता हूं। दूसरा बोला, उतरते ही चाय में कुछ ठंडक आ जाती है अतः में तो अंगीठी पर रखी हुई उबलती-2 चाय पीता हूं। नीचे उतरने ही नहीं देता। तीसरे की कहानी और भी अजीब है, वह कहता है, मैं तो अपने मुंह में पानी, चायपत्ती, चीनी, दूध डालकर अंगीठी पर ही बैठ जाता हूं और चाय तैयार हो जाती है। कितने ही लोगों के साथ रहते हुए ऐसा लगता है कि मानो ये अंगीठी पर ही बैठे हैं। शांत रहना और औरों को शांति देना उनके स्वभाव में ही नहीं है।

लेकिन कुछ व्यक्ति इतने महान होते हैं कि उन्हें कितने ही प्रतिकूल वातावरण मिलें वे क्षुब्ध नहीं होते।

संत तिरुवल्लुवर की शांति के विषय में कहावत है कि एक युवक ने शर्त लगा दी कि मैं इन्हें गुस्सा दिलाकर छोडूंगा। एक बार तिरुवल्लुवर साड़ी बनाकर बाजार में बेचने आए तो वह युवक बड़ी उद्दण्डता के साथ उनके पास आया और बोला, 'ये साड़ी कितने रुपये की है?' तिरुवल्लुवर ने बताया चार रुपये की। उस युवक ने उस साड़ी के दो टुकड़े कर दिए, अब पूछा, इस आधे टुकड़े का क्या मूल्य है? तिरुवल्लुवर ने बिना संतुलन खोए बता दिया कि अब यह टुकड़ा दो रुपये का रह गया है। उस मनचले ने आव देखा न ताव, उसके भी

दो टुकड़े कर दिए और उसकी कीमत पूछने लगा तो तिरुवल्लुवर ने उसी सहजता से बता दिया कि एक रुपया। उसने तो उसके भी दो टुकड़े कर दिए और तिरुवल्लुवर उसका दाम आधा-2 करते गए। जब वह साड़ी चीर-2 हो गई तब उन्होंने कहा—युवक इन टुकड़ों की भले ही कोई कीमत नहीं रह गई लेकिन जीवन की महंगी चादर फटने नहीं पाए, ये मेरा भाव है। उसकी सुरक्षा मेरा प्रथम और अंतिम ध्येय है। ये धागे तो फिर भी जुड़कर कपड़े बन सकते हैं पर मन की शांति भंग होने के बाद उसका जुड़ना बहुत कठिन हो जाता है।

'रहिमन धागा प्रेम का मत देओ चटकाय
टूटे तो फिर ना मिले मिले गांठ परि जाय।'

संत एकनाथ रोजाना गोदावरी नदी में स्नान करने आते थे। ये उनका नित्य क्रम था। जिस रास्ते से वे घर से नदी पर आते, उस रास्ते में एक पठान का घर था। पठान बहुत दुष्ट प्रकृति का था। एक दिन उसने सोचा इनको दुःखी करूंगा। जैसे ही एकनाथ जी गोदावरी में स्नान करके अपनी झोंपड़ी की ओर चले, उस पठान ने ऊपर से उन पर थूक दिया। एकनाथ जी न झल्लाए, न तमतमाए। वापस नदी पर आए, स्नान किया और घर की ओर चल दिए। फिर पठान ने थूक दिया। वे फिर गोदावरी में स्नान करने लौट पड़े। पठान बाज नहीं आया, फिर थूक दिया। यों उसने एकनाथ जी पर 108 बार थूका पर उन्हें पठान की दुष्टता पर क्रोध नहीं आया, आखिरकार वह हार गया। अपने दुष्कृत्य की माफी मांगने आया। कहने लगा, आपकी परीक्षा करने वास्ते मैं आप पर थूकता रहा, मगर आप को क्रोध नहीं दिला सका। संत एकनाथ जी कहने लगे, मैं तो आपका आभार मानता हूं क्योंकि आपके कारण मुझे गोदावरी में 108 बार स्नान का पुण्य मिल गया। नहीं तो मैं तो एक बार ही डुबकी लगाकर चला जाता था। ये चिन्तन जिस विरले इंसान को हो जाता है वही संत है। बेशक वह संत का वेष रखता हो या न रखता हो। संत वह है जो शांति का देवता हो।

इटली में एक महान संत हुए, उन्हें Saint Francis of Assisi के नाम से जाना जाता है। उनकी जिंदगी के बहुत सारे किस्से प्रचलित हैं जो उनकी गहरी अध्यात्म दृष्टि के सूचक हैं। एक बार वे अपने शिष्य लियो के साथ किसी बंदरगाह से शाम को चले। उन्हें शहर में जाना था। गुरु ने शिष्य को मुखातिब होते हुए पूछा—लियो, क्या तुम बता सकते हो कि सच्चा संत कौन होता है? लियो कुछ कहता उससे पहले ही गुरु बोलने लगे। संत वह नहीं होता जो अंधों को आंख देता है और वह भी नहीं जो लंगड़ों को चलने की ताकत बक्शता है। हां, उसे भी संत मत मानना, जो मुर्दों को जिंदा करने की कला जानता है। लियो गुरु की बातें चुपचाप सुनता जा रहा था, लेकिन एक गहरी उथल-पुथल उसके अंदर शुरू हो गई थी क्योंकि सारी ईसाइयत इन्हीं तीन चार चमत्कारों के इर्द-गिर्द घूमती रही है। हर ईसाई बालक तथा हर नए बनाए जाने वाले ईसाई को 'ईसा' के चमत्कार बताए जाते हैं कि उन्होंने अंधे को आंख दी, लंगड़े को चलाया, मरे हुओं को जिलाया। इस तरह की और अनोखी घटनाओं के कारण ही हजारों सालों से हजारों प्रचारक प्रचारिकाएं 'संत' की पदवी से नवाजे गए थे। जिनके चमत्कार साबित हो गए वे 'संत' कहलाए, जिनके साबित नहीं किये जा सके उन्हें 'संत' का विरुद (पद) नहीं मिला। 'संतत्व' की इन निशानियों पर जड़ से प्रहार करने वाले असीसी ने आगे बात बढ़ाते हुए कहा। जब हम दोनों चलते-2 शहर की सराय तक पहुंचेंगे, तब तक अंधेरा हो चुका होगा। सराय का प्रबंधक गेट बंद करके विश्राम करने लगा होगा। हम दरवाजा खटखटाएंगे, पर वह जवाब नहीं देगा। हम फिर जोर से खटखटाएंगे तो वह हमें गाली देता हुआ कहेगा, भाग जाओ, हरामियो, ये समय सराय खोलने का नहीं है। हमें फिर भी दरवाजा खुलवाने के लिए कहना पड़ेगा। हमारे बार-2 के शोर से वह व्याकुल होकर हाथ में डण्डा उठाकर आएगा। दरवाजा खोलते हुए गुस्से में हमारे ऊपर डण्डा भी मारेगा और बुरी-2 गाली भी देगा। उस समय यदि हमें उस गाली देने, डण्डा मारने वाले में ईश्वर के दर्शन हों और हम उसके पैर

पकड़कर अपने लिए क्षमा मांगें तो समझ लेना, हम संत है वर्ना हम सब पाखण्डी और ढोंगी है।

संतत्व की इस परिभाषा को चरितार्थ करने वाले उस Saint Francis of Assisi के विषय में कई और घटनाएं मैंने पढ़ी है। एक तो ये कि अपने अंतिम समय में उसने अपने आलोचकों से तो क्षमा मांगी ही थी, अपने शिष्यों से भी हाथ जोड़कर क्षमा मांगी। फिर वह अपनी चारपाई से उठकर अपने गधे के पास भी गया। उसके गले लगकर रोया। कहने लगा—देख, मेरे प्यारे गधे, तू मुझे माफ कर देना। तूने मेरा वजन उठाया। मैंने तेरी मजबूरी भी नहीं पूछी। मेरे शिष्यों ने तो एक बार मना भी कर दिया होगा लेकिन तूने कभी मना नहीं किया। अपने गधे से खिमतखिमाना करके उसने अपनी लाठी से भी माफी मांगी। यह कहकर कि प्यारी लाठी, मैंने कभी तूझे गंदगी पर भी रख दिया तो तूने गिला नहीं किया, मैंने विश्राम कर लिया, मगर तुझे लिटाया भी नहीं, इसलिए मेरी गल्तियों को आखिरी बार माफ कर देना। उस महात्मा ने लोगों से विदा लेते हुए सबको धन्यवाद दिया।

उसका अपने शरीर के प्रति क्या दृष्टिकोण था यह भी जानने लायक है। उसने अपने शरीर को कहा 'हे परम मित्र, तेरा मेरे ऊपर महान् उपकार है। मैंने तुम्हें अनेक कष्ट दिए, नाना प्रकार की यातनाएं दी किंतु तुमने प्रारंभ से अब तक मेरा पूर्ण सहयोग दिया। तेरी कृपा से ही मैं परमात्मा के निकट पहुंच पाया हूं। इस विदाई के क्षण में मैं तुम्हें बार-2 धन्यवाद देता हूं।''

शरीर और आत्मा की भिन्नता का अनुभव इस महात्मा को हो रहा है, ऐसा प्रतीत हो रहा है जिस साधक को देह और आत्मा की पृथक्ता का बोध हो जाए, उसकी कषायें स्वभावतः ही मंद हो जाती हैं।

"जगत् के तारने वाले जगत् में संत जन ही हैं,
इन्हें उपमा कहो क्या दें? अपन से वे अपन ही हैं,

कुल्हाड़ी से कोई काटे, कोई या फूल बरसाए,
दुआ[1] यक्सां[2] दे दोनों को अजब सारे चलन ही हैं ॥"

मेरे गुरुभ्राता जीवन साथी श्री रामप्रसाद जी के भजनों का क्या अनूठा स्वाद है। उसकी कुछ लाइनें है–

उपवन के माली फूलों को बर्बाद मत करना,
और तीखे-2 शूलों को आबाद मत करना।
गुस्सा आने ही ना पाए, आए तो शांत हो,
ऐसा न हो मन द्वेष से विकृत नितान्त हो।
गुजरी हुई कड़वाहटों को याद मत करना,
और तीखे-2 शूलों को आबाद मत करना।
इस बेलगाम जीभ को चलने नहीं देना,
इस मंथरा की दाल तुम गलने नहीं देना।
रखना काबू में ही इसको आजाद मत करना,
और तीखे-2 शूलों को आबाद मन करना ॥

एक भाई ने पूछा, गुरुदेव, गुस्सा कितना करना चाहिए। मैंने कहा, गुस्सा करना जरूरी तो नहीं है फिर भी मैं एक सवाल पूछता हूं। तुम दूध कितना गर्म पीते हो, वह युवक कहने लगा, गुरुदेव सुहाता-2। बस, गुस्सा करना भी तो सुहाता-2 करना। जो सुनने वाले को सुहा जाए, बस उतना ही गुस्सा खपेगा। नहीं तो किसी का दिमाग जलेगा, किसी का कलेजा जलेगा। दरअसल, गुस्सा करना भी उतना बुरा नहीं है, जितना बुरा है गुस्सा रखना। कोई बात हो गई, प्रतिकूलता बन गई, तरारा-जोश तल्खी बन जाती है मगर उसे लंबे समय तक मन में बसाए मत रखो। अंदर रखने से वह जहर बन जाता है। द्वेष का रूप ले लेता है। अपना स्तर बनाए रखो कि क्रोध को दीर्घकाल तक नहीं खींचे रखना। भूलो और आगे बढ़ो। बड़े आदमियों की पहचान

1 शुभकामना 2 समान रूप से

भी यही है कि वे अपने स्टैण्डर्ड को गिरने नहीं देते। वे क्रोध या तो करते ही नहीं, यदि आ भी जाए तो जुबान खराब नहीं करते। वे बड़ी शालीनता से अपना गुस्सा या नाराजगी प्रकट करेंगे। और लंबे समय तक गिले शिकवों का पिटारा नहीं खोले रखते। वक्त गुजरता जाता है और वे अपने आगामी कार्यक्रमों में जुट जाते हैं। उन्हें बार-2 पीछे झांकने की फुर्सत नहीं होती। शरीर में भी तापमान होता है, थर्मामीटर में भी। थर्मामीटर का तापमान जरा से झटकने से नीचे आ जाता है। ऐसे ही जीवन के ऊंचे-2 वाकयात में से गुजरने के बाद क्रोध आए भी तो तत्काल झटक दो। स्पेन के एक प्रसिद्ध कवि हुए हैं Luis de Leon. क्रांतिकारी विचारधारा के प्रवर्त्तक थे। उन्होंने स्पेनिश भाषा में Bible का अनुवाद किया, मगर अनुवाद में भी उनकी क्रांति का पुट था। इसलिए वहां का रोमन कैथोलिक समाज खिलाफ हो गया। सारे देश में उसके खिलाफ माहौल बन गया और सरकार ने उसको कारावास में डाल दिया। पांच साल तक उसे बंद रहना पड़ा। आखिर वह बाहर आया। उसका भाषण सुनने मानव मेदिनी उमड़ पड़ी। उसके चित्त पर कोई उद्वेग नहीं था। चेहरे पर कोई आवेश नहीं था। बिल्कुल शांत और प्रसन्न। पांच वर्ष पूर्व जिस विषय को सुनाते-2 वह गिरफ्तार हुआ था, उसी को उद्धृत करते हुए उसने गंभीरता से कहा, 'दोस्तो, कल मैंने जो कहा था, अब उससे आगे का विषय शुरू कर रहा हूं।' उसकी भावभंगिमा ऐसी थी मानो पिछले पांच सालों में कुछ हुआ ही नहीं। ये है मानवता का ऊंचा स्तर। इसी तरह का जीवन जो मानव जीएंगे, उनका यहां भी कल्याण होगा, आगे भी कल्याण होगा।

5. भाषा संयम के लिए अल्प भाषण जरूरी

साहू गोयम पण्णा ते छिन्नो मे संसओ इमो।
नमो ते संसयातीत सव्व सुत्त महोदही ॥

पूज्य गुरुदेवों की कृपा से जो कुछ सीखा है कुछ देर आपके समक्ष रखेंगे। भव्य जीव धर्म आराधन करें, रत्नत्रय को उज्ज्वल करें, यही हमारी कोटिशः मंगलकामनाएं हैं।

तीर्थंकर भगवंतों की वाणी—

'मा य चाण्डालियं कासी, बहुयं मा य आलवे,
कालेण य अहिज्जित्ता तओ झाइज्ज एगओ'

हे साधक, अपने क्रोध को चाण्डालता के स्तर पर मत जाने देना तथा सीमा से ज्यादा भी मत बोलना, समय पर स्वाध्याय करना तथा फिर एकांत में ध्यानलीन हो जाना। क्रोध से बचने का एक उपाय भाषा का संयम है। संसार में बहुत सारे झगड़े और कलह-क्लेश तो भाषा के कारण हो रहे हैं। आदमी बिना आगे पीछे की सोचे, बोलता जाता है। उसे ये भी ध्यान नहीं रहता कि मैं जो बोल रहा हूं, वह सही है या नहीं। अनाप-शनाप बोलना एक आदत बन गई है, शौक बन गया है। यह छोटी सी दो इंच की जीभ छह फुट के आदमी को नचाए फिर रही है। कितनी-कितनी लड़ाइयां इस जीभ के कारण होती रही है। **'रहिमन जिह्वा बावरी कह गई आकाश पाताल, आपहूं ता भीतर गई जूती खात कपाल।'** बिना वजह के फिजूल बकवास करने वाली जीभ खुद बत्तीस पहरों के बीच जाकर सुरक्षित बैठ गई और पिटाई हुई बेचारी खोपड़ी की।

उत्तराध्ययन सूत्र में ऐसे शिष्यों का नक्शा खींचते हुए कहा है—

'अणासवा थूल वया कुसीला, मिउंपि चण्डं पकरिंति सीसा'।

जो शिष्य गुरुओं की सुनते नहीं और खुद ऊंची-ऊंची आवाज में अपनी बात बोलते हैं, ऐसे गंदे स्वभाव वाले शिष्य अपने ठण्डे और कोमल स्वभाव वाले गुरु को भी गुस्सैल बना देते हैं।

दरअसल तो जिन लोगों को करना कुछ नहीं होता, वे बोलते रहते हैं, उनकी ताकत करने में नहीं, बोलने में छिपी रहती है। **'वाया वीरिय मेत्तेण समासासेंति अप्पयं'** कुछ लोग केवल वाणी की शक्ति के भरोसे अपने आप को महानता का आश्वासन दे देते हैं। **'थोथा चणा बाजे घणा'** आज ऐसे लोग समाज में मंचों पर हावी होते जा रहे हैं, जिनका आचरण शून्य है, केवल वागाडम्बर से, लच्छेदार भाषणों से जनता को गुमराह करते रहते हैं। जैसे-जैसे वक्ताओं की कद्र बढ़ रही है, असली काम करने वाले उपेक्षा के शिकार हो रहे हैं। **'वक्तारो दर्दुरा यत्र तत्र मौनं हि शोभते'** जिस इलाके में मेंढकों की टर्र-टर्र ही सुनाई देती हो वहां कोयलों का चुप रहना ही बेहतर है।

'अधजल गगरी छलकत जाय' जो घड़ा भरा होता है, वह कभी नहीं छलकता जबकि आधा भरा घड़ा कदम-कदम पर छलकता जाता है।

उर्दू के शायर ने बड़ी मौजूं[1] बात कही है—

'कह रहा है शोरे-दरिया से समन्दर का सकून।
जिसका जितना जर्फ[2] है उतना ही वह खामोश है ॥'

आज हर साधु साध्वी अपनी पहचान बनाने के लिए बस बोले जा रहा है। कोई उसकी सुने, ना सुने। बस बोलने से मतलब है। बोलने वाले का सामने वाले पर इतना असर नहीं होता जितना आचरण करने वाले का होता है। हमारे तपस्वी श्री बद्री प्रशाद जी म. ने कितनी कथाएं की? लेकिन उनका तो जीवन ही बोलता था।

भगवान् महावीर स्वामी दीक्षा से लेकर केवल ज्ञान तक अक्सर मौन ही रहे। वे तो मानते थे कि ज्यादा बोलने से जीवन की ऊर्जा क्षीण

1 तर्कपूर्ण 2 सामर्थ्य

हो जाती है। जो ऊर्जा साधना के विकास के काम आनी होती है, वह व्यर्थ की बातों में क्यों ज़ाया[1] हो?

कुछ लोगों को बातें करने की खाज उठती रहती है, वे बिना बोले रह ही नहीं सकते। इस किस्म के लोग संतों के पास जाकर उनका समय ही खराब करते हैं। एक भाई मेरे पास आया। कहने लगा, गुरु म., मैं आपका समय पास (Pass) करवाने आया हूं। आप अकेले ऊब गए होंगे? मैंने कहा, तू यहां से दया पाल, मुझे समय Pass करने की समस्या नहीं है। मेरे पास तो ज्ञान, ध्यान, स्वाध्याय, जप, तप, आत्मचिंतन जैसी अनमोल चीजें हैं। मैं तेरी बातों में अपना समय क्यों बर्बाद करूंगा। यदि तुझे कुछ सीखना है तो बात कर वर्ना दया पाल। आजकल हम लोग भी सामाजिक ज्यादा हो गए हैं। दिनभर लोगों के बीच बैठे रहो। सुख-दुःख की बातें पूछते रहो तो गृहस्थ भी खुश रहते हैं, किसी से ना बोल सको, वही फतवा दे देता है कि म. तो अमीरों के हो गए। हमें अमीरों से क्या लेना है, न हमें कोई मठ बनवाना, न लाइब्रेरी खुलवानी, न चंदा लेना, न चिट्ठी-पत्री भिजवानी, न पोस्टर छपवाने। हमारे लिए तो गरीब और अमीर सब बराबर हैं। लेकिन लोगों की अपनी सोच है। उनसे बोल लो तो ठीक, नहीं तो नाराज।

भगवान् महावीर तो सर्वथा जागरूक थे। उन्हें मौन में आनन्द आता था। आचारांग में कई प्रसंग हैं जहां भगवान् महावीर ने न बोलने की प्रतिज्ञा को बड़ी खूबी से निभाया ***'अयमन्तरंसि को एत्थ, अहमंसि ति भिक्खू आहंसु।*** **अयमुत्तमे से धम्मे तुसिणीए सकसाइए झाति'** भगवान् किसी सूने घर में होते तो बाहर से कोई पूछ लेता कि अंदर कौन है? तो भगवान् सहज भाव से कह देते कि मैं भिक्षु हूं। यदि आने वाला आदमी उनसे और ज्यादा बोलने की इच्छा रखता तो भगवान् चुप रह जाते, क्योंकि उन्हें मौन ही उत्तम धर्म लगता था। भगवान् की चुप्पी से नाराज व्यक्ति यदि गुस्सा करता तो भगवान् ध्यान मुद्रा में चले

---

1 खत्म

जाते। उनके लिए ध्यान प्रमुख था, चर्चाएं गौण। ध्यान से कर्म निर्जरा का रास्ता खुलता है जबकि चर्चाओं से प्रमाद वृद्धि और कर्म बंध की संभावनाएं बढ़ती हैं।

आचारांग में ही उल्लेख है **'अप्प बुइएऽप्पडिभाणी'** भगवान् महावीर अपनी ओर से बातचीत प्रारंभ नहीं करते थे तथा किसी अन्य द्वारा बातचीत चालू किए जाने पर प्रत्युत्तर भी बहुत कम देते थे ताकि वार्ताक्रम चालू ही न हो। **'जे के इमे अगारत्था मीसीभावं पहाय से झाति, पुट्ठो वि नाभिभासिंसु गच्छति नाइवत्तइ अंजू'** श्रमण भगवान् महावीर स्वामी गृहस्थों के बीच अधिक मेलजोल बढ़ाने की बजाय ध्यान की ओर एकाग्र रहते थे। कोई उनसे तरह-तरह की पूछताछ करता तो भी उसका जवाब नहीं देते थे अपितु सीधे अपनी यात्रा को गतिमान रखते थे।

कुछ लोगों का ख्याल ये रहता है कि अधिक बोलना अन्तर्ज्ञान की सूचना देता है। वे मानते हैं कि जैसे-जैसे आदमी का ज्ञान बढ़ता जाता है वैसे-वैसे उसकी वाणी से स्वर फूटने लगते हैं। जबकि कुछ लोगों का मानना है कि सच्चा ज्ञानी तो धीरे-धीरे शब्दहीन होता जाता है। वह मानने लगता है कि शब्द सत्य के कमजोर वाहक होते है। वास्तविक ज्ञान को तो शब्दों में पिरोया नहीं जा सकता। इस विषय में आगमकारों का कथन है कि दोनों पक्ष कहीं न कहीं सही हैं।

'नाणी वयंति अदुवा वि एगे, एगे वयंति अदुवा वि नाणी।' कुछ ज्ञान-संपन्न व्यक्ति बोलते भी हैं, नहीं भी बोलते तथा कुछ बोलने वाले ज्ञानी हो भी सकते है, न भी हों। प्रभु महावीर न अधिक बोलने के हक में हैं, न बिल्कुल चुप रहने के पक्ष में है। वे सामान्य मानव की विवशताओं को जानते हैं। वह बिना बोले रह नहीं सकता और निरंतर बोलता ही रहे यह भी उसके तथा समाज के भले में नहीं है। अतः उन्होंने कहा है **'बहुयं मा य आलवे'** हे साधक, अधिक बोलने से बच। जैन दर्शन में ऐसे केवली भगवंतों का वर्णन मिलता है जो सर्वज्ञ

सर्वदर्शी होकर भी उपदेश नहीं देते। उन्हें प्रत्येक बुद्ध कहा जाता है। वे अपनी तरफ से किसी को ज्ञान वितरण नहीं करते। टीकाकारों की मान्यता है कि दो प्रत्येक बुद्ध इकट्ठे भी हो जाएं तो वे एक-दूसरे से वार्तालाप नहीं करेंगे। कुछ-कुछ ऐसी ही एक घटना कबीर और फरीद के बारे में मशहूर है कि परम ज्ञानी फरीद तीर्थयात्रा पर जा रहे थे। साथ ही कुछ शिष्य भी थे। जब काशी से निकल रहे थे तब कोई शिष्य बोला, 'कबीर का आश्रम करीब है, हम दो दिन रुक जाएं। आप दो ज्ञानियों की बातें होंगी, हम पर तो अमृत की वर्षा हो जाएगी और विश्राम भी हो जाएगा। फरीद हंसते हुए बोले, 'बात ठीक है। रुक जाते हैं।' उधर कबीर के आश्रमवासियों को फरीद के आगमन की खबर लगी। कबीर से कहा, 'फरीद को रोक लें। दो दिन का साथ हो जाएगा। सत्संग का रूखा-सूखा अंश भी हमारे हाथ लग गया तो वह जीवनदायी हो जाएगा।' कबीर हंसकर बोले, 'ठीक बात है, उन्हें रोक लो।' कबीर फरीद को लेने गांव के बाहर चले गए। दोनों गले मिले। एक-दूसरे की आंखों में झांका, मुस्कराए, लेकिन बोले कुछ नहीं। दोनों के शिष्य बेचैन होने लगे। आश्रम भी आ गया। शिष्य ये सोचते रहे, 'शायद रास्ते में नहीं बोलते होंगे।' आश्रम में दोनों आकर बैठ गए। विश्राम हो गया। क्योंकि सामान्य मानव की तो यही समझ है कि जो बोलने में आ जाए वही ज्ञान है, जो बोलने में नहीं आता, वह जनसाधारण के हिसाब से ज्ञान नहीं है। इसीलिए दोहा चलता है—

'ज्ञानी से ज्ञानी मिलें करें ज्ञान की बात।
मूरख से मूरख मिलें या घूसा या लात ॥'

बात तो कबीर और फरीद में भी हुई। उनके बीच बहुत कुछ आनन्द बहा, बड़ा लेन-देन चला, मगर वह निःशब्द लेनदेन था। शास्त्र वाक्यों का लेन-देन न था। दो पढ़े-लिखे पंडितों की जो शब्द चर्चा होती है, वो नहीं थी। पंडित तो सिद्धांतों की बात की खाल तक निकाल देते पर वे दोनों तो शून्य हो चुके थे। जैसे पानी की दो बूंदे मिलकर एक

बूंद हो जाती है। शिष्यों के लिए दो दिन लंबे हो गए। सोचा था, बड़ा आनन्द आएगा। पर उन्हें तो पीड़ा सी हुई। पर गुरुओं से कुछ कहना भी मुश्किल था। दो दिनों के बाद फिर दोनों गले मिले। आंखों से अश्रुधारा बही। बड़े प्रेम से, गद्‌गद भाव से विदा हुए। फरीद ने शिष्यों को समझाया, 'जो सामने था, वह बिना बोले समझा जा सकता था, इसलिए मैं चुप रहा। हम दोनों में खूब लेनदेन हुआ। हम एक-दूसरे में डूबे।' कबीर ने भी शिष्यों को कहा, 'दो ज्ञानी मिले तो चुप रह जाते हैं, शून्य में उनका संवाद होता है।'

यह है आध्यात्मिक धरातल का मौन। इस मौन का ही परिणाम होता है कि आदमी के अन्तस्तल से जीवन के गहन रहस्य फूटने लगते हैं। एक सुरम्य काव्य प्रगट होने लगता है। अधिक बोलने से काव्य का स्रोत सूख जाता है, मौन से वह स्रोत तरोताजा हो जाता है। सिक्खों के पहले गुरु श्री नानकदेव जी चलते-चलते जगन्नाथ पुरी पहुंचे। जगन्नाथ पुरी तो हिन्दुओं का प्राचीन तीर्थ रहा है। उनका मन भी हुआ कि चलें, भगवान् जगन्नाथ, सुभद्रा एवं बलराम के मंदिर में जाएं। सायंकाल था। आरती का समय था। शंख और घंटे बज रहे थे। चारों ओर हलचल और कोलाहल था। शांति और मौन के लिए कोई गुंजाईश ही नहीं थी। उन्हें मंदिर में शांति का वातावरण नहीं मिला तो बाहर आकर खड़े हो गए। अंतरात्मा से ही आरती हो गई। वही काव्य बनकर बहने लगी।

गमनमय थाल रविचन्द दीपक बने, तारक मंडल जनक मोती।
धूप मलयानिलो पवन चंवरी करे, सकल वन राई फूलंत जोती।

सारी सृष्टि ही आरती में ढल रही है, अलग से आरती का आडंबर करने की क्या जरूरत है। आकाश थाल बना हुआ है। सूर्य और चांद दीपक है। तारे मोतियों का स्थान लिए हुए है। मलयानिल[1] ही धूप है

1 मलय देश से आती हुई हवाएं

तथा हवा ही चंवर बन गई है। प्रत्येक वृक्ष का फूल अपना अर्घ्य दान कर रहा है।'

प्रकृति के द्वारा रची गई आरती में कहीं कोलाहल भी नहीं है, फिर भी यह सच्ची आरती है। जबकि इंसान आरती को ऊंची-ऊंची आवाज में बोल भी देता है पर अंतरात्मा की अनुभूति का असर उसमें नहीं आता है।

बड़बोलापन मानव की गंभीरता का प्रतीक नहीं है। बल्कि सीमित परिमित भाषण उसकी बात में वजन डाल देता है। ज्यादा बोलने से सबसे बड़ा खतरा तो ये है कि आदमी झूठ बोलने को मजबूर हो जाता है। स्वामी दयानन्द सरस्वती के जीवन का प्रसंग है कि एक श्रद्धालु ने उनसे कहा—''अपने प्रवचन में आप ऐसा न कहा करें कि यह बात वेदों में लिखी है।'' किंतु ऐसा कहा करें कि ''ईश्वर ने साक्षात् यह बात मुझे बतलाई है।'' स्वामी जी बोले, 'भाई, सत्य के प्रचार के लिए मैं असत्य का सहारा नहीं ले सकता, असत्य के आधार पर सत्य का प्रचार करने वाला वास्तव में तो असत्य का ही प्रचार करता है।'' सलाह देने वाले को पता चला कि बोलने वाले को कितनी सीमाओं में रहना होता है।

आज असत्य का बोलबाला है। चारों तरफ झूठ का ढोल बज रहा है। किसी को चिंता ही नहीं रही कि हमें क्या बोलना चाहिए, कितना बोलना चाहिए, कब और कैसे बोलना चाहिए। नियंत्रण हीन, सीमा हीन जिंदगी का नतीजा क्या होगा किसी को कुछ पता नहीं। सब एक-दूसरे को ठगने में लगे हुए हैं। आपाधापी सी मची हुई है। ऐसा हुआ कि एक घर में एक मेहमान आ गया। नाम था गुरदित्ता। घर वाले उसे देखते ही घबरा गए। न जाने कितने दिन ठहरेगा, क्या-क्या खिलाना पड़ेगा। सेठ, सेठानी, लड़का और लड़की चारों ने आंखों ही आंखों में इशारा कर दिया कि किसी तरह इस मेहमान को घर से भगाया जाए। नकली लड़ाई कर लेते हैं और यह लड़ाई देखकर घबरा कर चला जाएगा। ऊपर से घरवालों ने मेहमान का जी भरकर स्वागत किया। आओ जी आओ

जी, बड़े दर्शन दिए। फिर सेठ ने लड़के से कहा बेटा, जल्दी बाजार जा और अच्छा सा सामान लेकर आ, अपने मेहमान गुरदित्ता जी बड़े दिनों में आए हैं। बेटी से कहा—बेटी रानी, ताजा पानी कूएं से लेकर आ। बेटा-बेटी बाहर चले गए। सेठ जी ने सेठानी से कहा—सेठानी, कल मैंने रुपये दिए थे, वो कहां हैं? वो बोली—अंदर अलमारी में रखे है, उठा ले। सेठ अंदर गया। अंदर से ही आवाज दी, यहां अलमारी में रुपये नहीं है, अरी भागवान् कहां रख दिए। उसने भी जवाब दिया। वहीं ढूंढ लें, आंख खोलकर देख, सब मिल जाएंगे। वो अंदर बड़बड़ाता रहा, बाहर सेठानी गुर्राती रही। आवाजें तेज होती गई। मेहमान डरने लगा। सेठ को रुपये नहीं मिले। गुस्से में आकर सेठानी को पीटने लगा। कमबख्त बोलती भी नहीं, मेरी गाढ़ी कमाई तूने कहां बर्बाद कर दी। मेहमान तो वहां से उठकर भाग लिया। थोड़ी देर और कहा सुनी हुई। सेठ चुप हो गया, सेठानी भी। तभी बेटा और बेटी भी आ गए। घण्टा-दो घण्टा बातें होती रही। फिर जिक्र आया असली कहानी पर, सब अपनी डींग हांकने लगे। सेठ बोला—**'देखा मेरा साका, झूठा ही थपथपाका, मारी मैं भी नहीं।'** सेठानी ने अपनी चालाकी बताते हुए स्पष्टता दी—**मेरा नाम है भरपाई, मैं नकली ही बड़बड़ाई, रोई मैं भी नहीं।** बेटी कैसे पीछे रहती, उसने भी तान में तान मिला दी, **'मेरा नाम है राणी, मैं लेने गई थी पानी, पर लाई मैं भी नहीं।'** बेटा कहां पीछे रहने वाला था। उसने होशियारी जताते हुए कहा, **'मेरा नाम दीवाना, मैं लेने गया था खाना, पर लाया मैं भी नहीं।'** वे अपनी-अपनी शेखियां बघार रहे थे। तभी क्या देखते हैं कि उनका मेहमान तो वहीं उनके बीच आ खड़ा हुआ और बोला, **'मेरा नाम है गुरदित्ता, मैं चढ़ चौबारे सुत्ता, पर गया मैं भी नहीं।'** सब देखते के देखते रह गए। जहां इस प्रकार की चालबाजियां होंगी, वहां किस पर ऐतबार किया जा सकता है? न किसी की जुबान का भरोसा है, न किसी के काम का।

ऐसी ही एक घटना सौराष्ट्र गुजरात के एक गांव की है। उस गांव के सभी घरों में घोड़ा या घोड़ी से सफर करते थे। घोड़ी पर सफर

करना एक तरह से शान मानी जाती थी। छोटे भाई की घोड़ी बीमार हो गई और उसे पास के गांव में जाना जरूरी था। सोचा, बड़े भाई से मांगकर उसकी घोड़ी ले जाऊं। अपनेपन के नाते भाई के पास आया और कहा, अपनी घोड़ी दे दो, दोपहर तक वापस दे जाऊंगा।' बड़ा भाई देना चाहता नहीं था, मना करने में बड़प्पन कम होता इसलिए बात बदल दी, कहने लगे, 'घोड़ी घर पर नहीं है, खेतों में गई हुई है।' लेकिन कमाल ये हुआ कि तभी घोड़ी हिनहिनाने लगी। छोटा कहने लगा, 'घोड़ी तो अंदर है, आप झूठ क्यों बोल रहे हो?' बड़ा भाई तो गुस्से में आ गया। 'बेवकूफ, बेजबान घोड़ी की भाषा तुझे तुरंत समझ आ गई और बड़े भाई की भाषा तुझे समझ नहीं आई।' ये कहकर दरवाजा बंद कर दिया। भाषा की इस अविश्वसनीयता से बचने के लिए दशवैकालिक सूत्र में लिखा है **'मुसं परिहरे भिक्खू न य ओहारिणिं वए, भासा दोसं परिहरे, मायं च वज्जए सया'** भाषा की पहली सीमा है कि असत्य कभी नहीं कहना। दूसरी सीमा है कि सत्य कहते हुए भी अवधारिणी, दावे की भाषा नहीं बोलनी। तीसरी सीमा है कि भाषा में द्वेष का अंश भी नहीं आए एवं चौथी सीमा है कि माया, कपट और छल का प्रयोग न हो।

भगवान् की दृष्टि में भाषा का एक-एक शब्द बहुमूल्य होता है।

'शब्द सरीखा धन नहीं जो कोई जाने बोल
हीरा तो दामे मिलै शब्द का मोल न तोल।'
'शब्दे मारा मर गया, शब्दे तज गया राज
जाने सबद पिछानिया ताका सुथरा काज ॥'

टैलिग्राम देते समय जैसे एक-एक शब्द की कीमत अदा करनी होती है और इसी कारण कम से कम शब्दों का प्रयोग किया जाने का प्रयास रहा है, ऐसे ही सामान्य बोलचाल की भाषा में भी एक-एक शब्द की कीमत को पहचानना होगा। विदेशों में एक-एक मिनट की कीमत वसूल

की जाती है, तो अध्यात्म के दायरे में एक-एक शब्द की कीमत वसूल होती है। प्रख्यात आविष्कारक बेंजामिन फ्रैंकलिन की पुस्तक की बड़ी दुकान थी। नौकर काम करते थे, वे खुद अंदर बैठकर नई-नई योजनाएं बनाते रहते तथा नई खोजों की भूमिका बनाते रहते। एक ग्राहक पुस्तक खरीदने आया। एक पुस्तक की कीमत पूछी तो नौकर ने जवाब दिया 'एक डॉलर।' ग्राहक ने कहा, क्या इससे कम नहीं कर सकते? नौकर ने मना कर दिया। ग्राहक ने कहा, 'क्या फ्रैंकलिन महाशय अंदर है? मैं उनसे बात करके देख लेता हूं।' नौकर ने थोड़ी देर में फ्रैंकलिन जी को बुला दिया। ग्राहक ने उनसे पूछा, 'आप इस पुस्तक की कीमत कम से कम क्या लेंगे? फ्रैंकलिन ने तुरंत कहा—सवा डालर। ग्राहक तो हैरान हो गया। 'मगर अभी आपका आदमी एक डालर मांग रहा था।' फ्रैंकलिन ने स्पष्ट किया, 'ठीक है, मैं अपना काम छोड़कर बीच में आया हूं, मेरा समय नष्ट हुआ है, चौथाई डालर उसका लगेगा।' ग्राहक बात खत्म करने के इरादे से बोला, 'अच्छा अब बताइए, अब कम से कम कितना ले सकते है?' 'मैं डेढ डॉलर लूंगा।' ग्राहक हैरान परेशान हो गया 'अभी तो आप सवा डालर कह रहे थे।' 'जी हां, ध्यान रखिए, ज्यों-ज्यों आप मेरा समय नष्ट करते जाएंगे, पुस्तक की कीमत बढ़ती जाएगी।' फ्रैंकलिन ने साफ-साफ समझा दिया। ग्राहक ने डेढ़ डॉलर दिए और चुपचाप चला गया। जो लोग अधिक बोलकर दूसरों का समय नष्ट करते हैं, जब तक उन्हें सजा नहीं भुगतनी पड़ती, तब तक नसीहत नहीं मिलती। आज जरूरत है ऐसे व्यर्थ प्रलाप करने वाले व्यक्तियों को कुछ दंड मिले। वे न केवल अपना नुकसान करते हैं अपितु औरों को भी काफी हानि पहुंचाते हैं, इसलिए संवेदनशील समाजों में बड़बोले लोगों पर लगाम लगाने का अच्छा तरीका ईजाद किया है। वैसे भी बेंजामिन फ्रैंकलिन बड़ा विचारक रहा है। उसने अमेरिका तथा विश्व को कई नई विचारधाराएं दी है। ये भी उसकी विचारधारा का एक नमूना है।

एक बात अक्सर देखने में आई है कि जो आदमी ज्यादा बोलते हैं, वे काम कम करते हैं। समाज में ऐसे कागजी शेरों की बाढ़ आई हुई

है। नाम बड़े दर्शन छोटे। स्टेजों पर बड़े-बड़े भाषण झाड़ देंगे। समाज सुधार के लंबे-चौड़े सुझाव उनके पास होते हैं, मगर समाज को जरूरत हो तो फली नहीं फोड़ते। उनकी बातें सुनो तो लगेगा कि उन जैसा समाज का हमदर्द कोई नहीं होगा, मगर जैसे-जैसे उनको नजदीक से देखोगे तो पता चल जाएगा कि ये जनाब कितने पानी में है। उनका हाल ये है **'आओ मियां खाना खाओ' 'हम तैयार तुम हाथ धुलाओ।' आओ मियां छप्पर उठवाओ, हम बूढ़े कोई और बुलाओ।'**

पंचतंत्र में ऐसे लोगों को ढपोरशंख[1] कहा है। उसके पीछे एक कहानी आती है कि एक गरीब ब्राह्मण ने समुद्रतट पर जाकर समुद्र देवता की आराधना की। देव ने उसे एक छोटी सी शंखनी दे दी और कह दिया कि ये तुझे रोजाना एक रुपया देगी और तेरा गुजारा हो जाएगा। ब्राह्मण खुश हो गया। उस शंखनी को लेकर घर के लिए चल दिया। रास्ते में किसी बनिए के घर रात बिताने के लिए ठहर गया। बात-बात में बनिए ने उस शंखनी की करामात का पता लगा लिया और उसने रात को, जब ब्राह्मण सो रहा था तो उसके थैले में वैसी ही दूसरी शंखनी रख दी और वरदान देने वाली शंखनी चुरा ली। ब्राह्मण को चोरी का पता नहीं लगा। सुबह अपना थैला उठाया और घर के लिए रवाना हो गया। वहां पहुंचकर शंखनी बजाई और एक रुपया मांगा तो नहीं मिला। बड़ा उदास और निराश हुआ। दोबारा समुद्र तट पर जाकर देवता की आराधना की। देवता हाजिर हुआ। ब्राह्मण ने बताया कि शंखनी तो बेकार हो गई। देवता ने बताया कि शंखनी को बनिए ने चुरा लिया और वैसी ही दूसरी शंखनी तेरे पास आ गई। अब मैं तुझे बड़ा शंख दूंगा जो ऊंची आवाज करेगा। तू इससे एक रुपया मांगेगा तो ये कहेगा कि मैं तो दो रुपया दे दूं। सौ मांगेगा तो दो सौ देने की बात कहेगा। जितना मांगो उससे दुगुना देने का वायदा करेगा, पर देगा कुछ नहीं। तू जरा होशियारी से इसकी ऊंची-ऊंची बातें उस बनिए को सुना देना और तेरा काम बन जाएगा। ब्राह्मण घर की ओर

1 झूठा शंख

चला और इरादतन उस बनिए के घर जाकर रुका। बनिया पहले तो सहमा कि कहीं कोई झगड़ा न कर दे। मगर ब्राह्मण ने कुछ ऐसा नहीं किया तो चैन पड़ गई। कुछ देर बाद ब्राह्मण ने शंख बजाया, शंख में से आवाज आई कि वर मांगो। ब्राह्मण ने कहा, 'मुझे सौ रुपए दे दो, शंख ने कहा—दो सौ ले ले। ब्राह्मण दौ सौ लेने चला तो आवाज आई कि चार सौ ले ले। ब्राह्मण ने थोड़ी हुशियारी की, कहने लगा कि इतनी बड़ी जोखिम रास्ते में नहीं, घर पहुंचकर ले लूंगा। शंख चुप हो गया। बनिए ने सारा माजरा देख लिया। फिर लोभ जागृत हो गया। ब्राह्मण सो गया, या कहो कि नकली नींद में चला गया। बनिए ने शंख निकाला और उसकी जगह वही छोटी शंखनी रख दी। ब्राह्मण ने ये तब्दीली देख ली। अब आराम से सोया, सुबह अपना थैला उठाया और घर की तरफ कूच कर दिया। इधर बनिए ने शंख बजाया, आवाज आई, क्या चाहिए। बनिए ने कहा—चार सौ रुपये। शंख ने कहा, ले आठ सौ रुपये। बनिया तो बाग-बाग हो गया। जैसे ही उसने कहा—अच्छा, आठ सो रुपये दोगे तो आवाज आई ले सोलह सौ रुपए। यों बढ़ते-बढ़ते 32 सौ, 64 सौ, हजारों-लाखों, करोड़ों रुपये देने के दावे होने लगे। बनिया तो थक सा गया। उसने गुस्से में कहा—यार, तू दे दे, जितने देने हो। उस समय शंख में से आवाज आई, **'रुप्यमेकं ददाति या गता सा लघु शंखिका, अहं ढपोर शंखोस्मि वदाम्येव ददामि न।'** वो छोटी सी शंखनी, जो रोजाना एक रुपया देती थी, वो तो अब गई। मैं तो ढपोर शंख हूं जो बोलता-बोलता हूं, देता बिल्कुल नहीं। इस तरह से ढपोर शंखों ने समाज का बेड़ा गर्क किया हुआ है। भोले भाले लोग, उनकी चिकनी-चुपड़ी बातों में आ जाते है। निरंतर निरर्थक बोलने वालों के विपरीत काम करने वालों के बारे में लिखा है—

'जो कभी अपने समय को यों बिताते हैं नहीं,
काम करने की जगह बातें बनाते हैं नहीं।
आजकल करते हुए जो दिन गंवाते है नहीं,

यत्न करने में कभी जो जी चुराते हैं नहीं।
बात है वह कौन जो होती नहीं उनके लिए,
वो नमूना आप बन जाते हैं औरों के लिए ॥

इसके विपरीत सिर्फ दावा करने वालों के लिए लिखा है–

'नाग जब लोगों को डसकर हो गया नजरों से दूर
बीन लेकर शहर में कितने सपेरे आ गए।'

'युग बीत गया कुछ करने का क्यों याद उसे अब भ्रात करो,
है आज जमाना बातों का बस बात करो बस बात करो।'

इस देश की कितनी बदनसीबी है कि पहले के मुकाबले में आज हमारे नेता कितने बदल गए हैं। पहले जेलों में जिंदगी बिताने वाले देश के नेता थे। आज ए.सी. कमरों में बैठकर जनता के भाग्य का लेखा-जोखा लिखते है। पहले फांसी के तख्तों पर झूलकर भारत माता की लाज बचाने वाले थे। आज तख्तो-ताज के लिए मां की लाज लुटाने को तैयार बैठे हैं।

सन् 1925 की घटना है कि काकोरी कांड ने ब्रिटिश सरकार का तख्ता हिला दिया था। चन्द्रशेखर आजाद उस समय कुल 20 साल के नौजवान थे। उनकी गिरफ्तारी के वारण्ट जारी हो चुके थे और वह गिरफ्तारी से बचने के लिए अंडरग्राउण्ड थे। शहरों में स्थान-स्थान पर, थानों पर, स्टेशनों पर उसके नाम के पोस्टर चिपके हुए थे। 'आजाद को जीवित या मृत पकड़कर लाने वाले को पुरस्कार दिया जाएगा।' एक दिन आजाद को मजाक सूझा। एक साथी को लेकर थाने पहुंच गया और थाने के बाहर लगे पोस्टर को जोर-जोर से पढ़ने लगा। तभी पुलिस का अधिकारी आया और पूछने लगा, 'क्या पढ़ रहे हो?' आजाद बोला, 'क्या बताऊं, मूंगफली में तीन हजार का घाटा हो गया है। किसी पुलिस वाले से मिलकर इस साले आजाद को गिरफ्तार करवाऊं तो

काम बने।' आजाद का साथी बोला, 'लाला जी, इस चक्कर में मत पड़ जाना। आजाद का निशाना अचूक है। यदि आजाद ने गोली मार दी तो सारा घाटा पूरा हो जाएगा।' पास खड़ा पुलिस का अधिकारी भी कहने लगा, 'भाई, यही तो मुसीबत है, नहीं तो पुलिस उसे कभी का पकड़ चुकी होती।' आजाद मन ही मन मुस्कराया और चला गया। काफी समय बाद पुलिस अधिकारी को मालूम हुआ कि मूंगफली का वह व्यापारी और कोई नहीं, खुद चन्द्रशेखर आजाद था।

तो ऐसे क्रांतिकारी वीरों ने देश को आजादी दिलाई थी। जिन्हें न जिंदगी की चाह थी, न सुविधा-साधनों की। जिन्होंने न कभी पद मांगा, न धन। अपने प्राणों की आहूति देकर देश की आजादी का परचम आसमान में बुलंद रखे रहे।

यही हालत धर्म के क्षेत्र की है। हमारे गुरुदेव व्याख्यान वाचस्पति जी म. ने इस धर्म और कौम के लिए कितनी कुर्बानी दी है। आचार्य श्री कांशीराम जी म. के देवलोक के बाद जब पंजाब संप्रदाय में पदों की होड़ लगी हुई थी। उन्होंने गणावच्छेदक श्री बनवारी लाल जी म. के आदेश से सभी पदों का त्याग कर दिया। लुधियाना में ज्यादातर संत उन्हें आचार्य बनाना चाहते थे, लेकिन उन्होंने तो आचार्य, उपाध्याय, प्रवर्त्तक, गणी, गणावच्छेदक इन पांचों पदों के त्याग की घोषणा कर दी। पंजाब के सभी प्रमुख संत स्तब्ध रह गए। सबने एक बात कही कि वाचस्पति जी म. जिस भी नाम पर मोहर लगाएंगे उन्हें ही आचार्य पद दिया जाएगा। हमारे गुरुदेवों ने उस समय उपाध्याय श्री आत्माराम जी म. का नाम प्रस्तावित करके आचार्य पद दिलाया। उन्होंने अपने शब्दों से नहीं, आचरण से सबके दिल को जीता, सारे माहौल को बदल दिया।

इसीलिए तो भगवंतों का कहना है **'मा य चण्डालियं कासी, बहुयं मा य आलवे।'** तीव्र क्रोध मत करो और ज्यादा मत बोलो। भगवंतों के इस आदेश पर जो भावों से चलेंगे उनका यहां भी कल्याण होगा, आगे भी कल्याण होगा।

6. स्वाध्याय का अमृत रस

साहू गोयम पण्णा ते छिन्नो मे संसओ इमो।
नमो ते संसयातीत सव्व सुत्त महोदही ॥

पूज्य गुरुदेवों की कृपा से जो कुछ सीखा है कुछ देर आपके समक्ष रखेंगे। भव्य जीव धर्म आराधन करें, रत्नत्रय को उज्ज्वल करें, यही हमारी कोटिशः मंगलकामनाएं हैं।

तीर्थंकर भगवंतों की वाणी–

'मा य चण्डालियं कासी, बहुयं मा य आलवे,
कालेण य अहिज्जित्ता तओ झाइज्ज एगओ।'

हे साधक, क्रोध की तीव्रता से बच तथा अधिक बोलने से भी बच। समय पर स्वाध्याय कर और एकांत में रह कर ध्यान कर। क्रोध की अधिकता तथा भाषा की वाचालता जीवन के नकारात्मक पहलू हैं। इनसे बचने के लिए प्रभु महावीर ने दो सकारात्मक पहलू दिए हैं, स्वाध्याय और ध्यान। जो साधक स्वाध्याय और ध्यान में लीन हो जाता है, उसके लिए क्रोध विजय और भाषा संयम मुश्किल नहीं रहता। इस के उलट, जिन साधकों के पास स्वाध्याय और ध्यान की पूंजी नहीं होती, वे अक्सर क्रोध और निरर्थक वाद-विवाद में अपना वक्त गंवाते रहते हैं।

'काव्य शास्त्र विनोदेन कालो गच्छति धीमताम्,
व्यसनेन तु मूर्खाणां निद्रया कलहेन च।'

बुद्धिमान इंसान अपना समय काव्य और शास्त्रों के अध्ययन में बिताते हैं जबकि नादान इंसान अपना समय व्यसनों में, नींद और झगड़ों

में गंवाते हैं। समय कीमती है, इसको सार्थक कार्यों में लगाओ नहीं तो यही समय आपको कुचल कर चला जाएगा।

'जा जा वच्चई रयणी न सा पडिणियट्टइ, धम्मं च कुणमाणस्स सफला जंति राइओ।' जो-जो दिन और रात बीत जाते हैं वे वापस लौटकर नहीं आते। जो प्राणी धर्म करते हैं उनके रात और दिन सफल हो जाते हैं और जो अधर्म करते हैं उनके निष्फल हो जाते हैं।

पुराने और आज के जमाने में कितना फर्क आ गया है। देख-देख तथा पढ़-पढ़कर अफसोस होता है, भगवान् ने तो कहा था कि साधु-साध्वी को चार काल स्वाध्याय करनी है। यों तो प्रतिक्रमण में आज भी हम पाठ बोलते हैं **'पडिक्कमामि चाउक्कालं सज्झायस्स अकरणयाए'** यदि मैंने चार प्रहर तक स्वाध्याय न की हो तो तस्स मिच्छामि दुक्कडं।' कहां रह गई आजकल दिन के पहले और अंतिम प्रहर की स्वाध्याय तथा रात के पहले और अंतिम प्रहर की स्वाध्याय। अब तो लोगों से बातचीत से फुर्सत मिले, निन्दा विकथाओं से, नींद और आहार पानी से फुर्सत मिले तब तो स्वाध्याय का नंबर आए। गुरु कह-कहकर थक जाते हैं कि शिष्य कुछ शास्त्र स्वाध्याय कर ले, मगर उन्हें तो बस इधर-उधर की बातों में ही मजा आता है। **'जाणामि जं वट्टइ आउसुत्ति किं नाम काहामि सुएण भंते।'** हे भगवान्, मुझे ये तो पता ही है कि आजकल क्या हो रहा है फिर शास्त्र-स्वाध्याय करके क्या करूंगा।

गौतम स्वामी चौदह पूर्वों के ज्ञाता थे फिर भी नित्य नूतन ज्ञान की प्राप्ति के लिए भगवान् के चरणों में प्रश्न पूछते रहते थे, जब कि हम जैसे जिन्हें कुछ भी नहीं आता, फिर भी गुरुओं से नया ज्ञान सीखने में अपना अपमान मानते हैं। इसी अभिमान के कारण तो हमारा उद्धार नहीं होता। संस्कृत के प्रकाण्ड पंडित मण्डन मिश्र के घर का पता बताने वाले ने कहा था कि जिस घर के बाहर तोता और मैना भी वेद के वाक्यों का उच्चारण कर रहे हों, समझ लेना कि वही मण्डन मिश्र का घर है। अब तो स्वाध्याय की रुचि ही खत्म होती जा रही है। आज की

तरक्की का तो ये आलम है—एक मित्र ने दूसरे मित्र से कहा, 'पहले मैं जहां काम करता था, वहां मेरे ऊपर 50 आदमी काम करते थे मगर अब मैं जहां काम करता हूं वहां 50 आदमी मेरे नीचे काम करते हैं। मित्र बड़ा हैरान हुआ। पूछने लगा, 'तुमने तो थोड़े ही दिनों में बड़ी तरक्की कर ली?' पहला बोला, 'कहां यार, पहले मेरा दफ्तर निचली मंजिल पर था, अब मैं ऊपर की मंजिल में चला गया हूं, बस इतना ही फर्क पड़ा है।' मंजिल बदलने मात्र से संतुष्ट रहने वालों का यही हाल होता है। हमारे गुरुदेव का अमर वाक्य है—'स्वाध्याय साधु के लिए उतना ही जरूरी है जितना कि नवजात शिशु के लिए मां का दूध।' जिस बालक को बचपन में मां का दूध पीने का मौका नहीं मिलता, उसका शारीरिक विकास रुक जाता है, उसी प्रकार जिस साधु साध्वी को स्वाध्याय की खुराक नहीं मिलती उसका आध्यात्मिक विकास भी रुक जाता है। उनका स्पष्ट मानना था कि बढ़ते हुए शिथिलाचार के पीछे स्वाध्याय की कमी बहुत बड़ा कारण है। वे खुद भी स्वाध्याय के गहरे अभ्यासी थे। रात में 2-3 बजे उठकर 2-3 हजार गाथाओं का स्वाध्याय प्रतिदिन करते थे। उनकी पूरी कोशिश रहती थी कि साल भर में 32 आगमों का एक बार स्वाध्याय अवश्य हो जाए। यदि किसी विशेष कारण से 32 आगम पूरे नहीं हो पाते तो ग्यारह अंगों का पारायण तो वे कर ही लेते थे। अपने गुरुदेव बहुसूत्री श्री नाथूलाल जी म. के देवलोक गमन पर उन्होंने प्रतिज्ञा ली थी कि मैं हर वर्ष 32 आगमों की स्वाध्याय करूंगा। श्री बहुसूत्री जी म. का जीवन तो स्वाध्याय की मिशाल ही था। उनके सांस-सांस में स्वाध्याय बसी हुई थी। स्वाध्याय करना और करवाना उनका शौक था। उनकी दिली तमन्ना थी कि छोटे-छोटे बच्चे दीक्षा लें और मैं उनको आगम सिखाऊं, थोकड़े पढ़ाऊं तथा उन्हें तत्वों का ज्ञान दूं। उन्होंने अनपढ़ लोगों को भी प्रतिक्रमण याद करवाया था। स्वाध्याय की ऐसी उज्जवल परंपरा में हमें शामिल होने का सौभाग्य मिला है। मेरे सांसारिक पिता बाबू चंदगी राम जी को आगम स्वाध्याय की गहरी रुचि थी। जब वे बी.ए. की पढ़ाई कर रहे थे तब गर्मी की छुट्टियों में

लाहौर से रोहतक आए हुए थे। पूज्य गुरुदेव भी वहीं थे। बाबू जी ने निवेदन किया, गुरुदेव, मैं जैन धर्म का मौलिक स्वरूप जानना चाहता हूं। गुरुदेव ने फरमाया, बाबू जी, उत्तराध्ययन सूत्र पढ़ो। बाबू जी दिन में आगम याद कर लेते और रात को गुरुदेव उसका अर्थ समझा देते। इस तरह गर्मी की छुट्टियों में उन्होंने अर्थ और मूल सहित संपूर्ण उत्तराध्ययन सूत्र कण्ठस्थ कर लिया था। उनकी याददाश्त बहुत तेज थी। वे एक घंटे में 80 श्लोक जुबानी याद कर लेते थे। मेरे गुरुदेव एक घंटे में 60 श्लोक याद करने की क्षमता रखते थे। मैंने भी एक घंटे में 40 श्लोक याद किए हैं।

जिन बालकों ने बचपन में शिक्षा हासिल नहीं की या नहीं कर सके, उनकी जवानी और जिन्दगानी प्रायः ठोकरों में ही रुली है। न वे अपना विकास कर सके, न परिवार की तरक्की कर पाए तथा न ही वे राष्ट्रीय उत्थान में कोई विशेष योगदान दे पाए। जब तक भारत में शिक्षा का बोलबाला था यह देश विश्व का गुरु कहलाता रहा था। यहां गांव-गांव में गुरुकुल थे। 7 साल की उम्र से लेकर 25-26 साल की उम्र तक हर बालक बालिका प्रचुर ज्ञान अभ्यास करता था। पुरुष 72 कलाओं में, कन्याएं 64 कलाओं में निष्णात हो जाते थे। उसके बाद ही वे गृहस्थ आश्रम का भार अपने ऊपर लेते थे। तक्षशिला जैसे विश्व विद्यालयों से पाणिनि, वररुचि, कात्यायन, विष्णु शर्मा जैसे उद्भट विद्वान् मंजकर बाहर निकले थे। नालंदा यूनिवर्सिटी में फाह्यान, ह्वेन सांग जैसे विदेशी विद्वान् पढ़ने आए थे। इस देश की मिट्टी के जर्रे-जर्रे में स्वाध्याय की सुगंध समाई हुई थी।

विदेशी आक्रमणकारियों ने यहां की अर्थव्यवस्था को ही तहस-नहस नहीं किया अपितु यहां के शिक्षण तंत्र को भी मिट्टी में मिला दिया। यहां के पुस्तकालय जला दिए। विश्वविद्यालय छिन्न-भिन्न कर दिए। पढ़ाई का सारा तरीका ही उजाड़ दिया। ब्राह्मण समाज जो ज्ञान का अक्षय कोष मानी जाती थी, उसे भूखा मरने के लिए मजबूर किया।

परिणाम ये निकला, भारत दीन-हीन दरिद्र देशों की श्रेणी में आ गया। इसके समानान्तर यूरोप-अमेरिका में शिक्षा का प्रसार हुआ, तो वहां सब तरह की प्रगति हो गई। भारत का पुराना आदर्श विदेशों में लागू हुआ।

'यद्यपि पुत्र नाधीतं मृगनेत्रासु रात्रिषु,
न शोभसे सभामध्ये हंसमध्ये बको यथा ॥'

हे पुत्र, यदि तू रात भर जाग-जागकर अध्ययन नहीं करेगा तो सभ्य लोगों के बीच वैसा ही लगेगा जैसे हंसों के बीच बगुला होता है।

कोऽर्थः पुत्रेण जातेन यो न विद्वान् न भक्तिमान्,
किं तया क्रियते धेन्वा या न सूते न च दुग्धदा ॥'

जिस संतान में न पढ़ाई, न नरमाई, उसका कोई लाभ नहीं। जैसे जो गाय न औलाद दे और न दूध, उस गाय का क्या करोगे?'

अमेरिका के राष्ट्रपति अब्राहिम लिंकन के बचपन का किस्सा है। उनके पिता Thomas Lincoln का काम बड़ी मुश्किल से गुजारे लायक था। पिता तो पुत्र को पढ़ा नहीं सकता था पर पुत्र को लगन बहुत थी। उसे पता चला कि जार्ज वाशिंगटन की जीवनी एण्ड्रू क्राफर्ड के पास है। अब्राहिम उससे पुस्तक मांगने गया। क्राफर्ड किसी को पुस्तक देता नहीं था क्योंकि पुस्तक सुरक्षित लौटने की संभावनाएं कम हो जाती थी। उसकी सोच भी अपनी जगह सही थी। बहुत से लोग पुस्तक की दुर्गति कर देते हैं। एक आदमी ने अपने मित्र को सलाह दी कि किसी को पुस्तक उधार मत देना, क्योंकि उधार ले जाने वाला वापस कभी नहीं लौटाता। मित्र ने पूछा, क्या आप खुद इस नियम का पालन करते हो, तो जनाब ने जवाब दिया देखो, मेरी लाइब्रेरी में कई हजार पुस्तकें हैं, ये सभी मैं उधार मांगकर लाया हूं और किसी को लौटाने नहीं गया।

पुस्तकों के संबंध में कितने ही किस्से सही या गलत प्रचलित रहे हैं जैसे कि प्रसिद्ध व्यंग्यकार मार्क ट्वेन अपने पड़ोसी से पुस्तक मांगने गया। पड़ोसी बोला—मित्र ट्वेन, मुझे पुस्तक देने में तो कोई दिक्कत

नहीं है मगर यह पुस्तक तुम्हें मेरे कमरे में पढ़नी होगी क्योंकि मैं अपनी पुस्तकें इस कमरे से बाहर नहीं ले जाने देता।' मार्क ट्वेन क्या कर सकता था। मगर कुछ दिनों के बाद वही पड़ोसी मार्क ट्वेन के घर झाड़ू मांगने गया तब ट्वेन ने उसकी बात ही उस पर लागू कर दी। 'मित्र, झाड़ू तो आप अवश्य ले सकते हो मुझे कोई आपत्ति नहीं है मगर झाड़ू आपको इसी कमरे में लगानी होगी क्योंकि मैं अपनी झाड़ू कमरे से बाहर नहीं ले जाने देता।

तो खैर, अब्राहिम लिंकन की गरीबी और पढ़ने की रुचि से क्राफर्ड भी प्रभावित था। उसे एक बात कही कि पुस्तक खराब मत करना तथा पढ़ते ही मुझे सुरक्षित लौटा देना। अब्राहिम बोला, यदि पुस्तक खराब हो जाए तो आप दंड दे देना। एण्ड्रू क्राफर्ड ने लिंकन को पुस्तक दे दी और लिंकन भी उस पुस्तक को रात भर पढ़ता रहा। आधी रात जब उसके पिता की आंख खुली तो अब्राहिम को पढ़ते देखा। उसे डांटा धमकाया और सुला दिया। उसने पुस्तक बंद की। खिड़की में रखी, लैंप बुझाया और सो गया। सुबह उठते ही ध्यान पुस्तक की तरफ गया लेकिन तब तक तो पुस्तक खराब हो गई थी। रात को बरसात आई, खिड़की में पानी रिसता रहा और पुस्तक के बहुमूल्य चित्र खराब हो गए। उसका तो दिल बैठ गया। आंखों से आंसू बह निकले। किस मुंह से एण्ड्रू के पास जाऊंगा। बड़ी दुविधा में था। फिर भी हिम्मत करके पुस्तक लेकर एण्ड्रू के पास गया। सारी स्थिति बताई तो उसे बहुत गुस्सा आया। 'तेरी उपेक्षा के कारण इस मूल्यवान पुस्तक का ये हाल हुआ है। तेरे पर विश्वास करके मैंने भयंकर भूल की है। यदि मैं तुझे ये पुस्तक न देता तो ये स्थिति नहीं होती।' लिंकन बोला, आप मेरे अपराध को क्षमा कर दें। एण्ड्रू का गुस्सा बढ़ने लगा। 'तुझे क्षमा करने से काम नहीं चलेगा। तुझे पुस्तक की कीमत चुकानी होगी। अतः वह बोला, मेरे पास तो एक पैसा भी नहीं है, कीमत कैसे चुकाऊं? क्राफर्ड ने कहा, पैसा नहीं, हाथ पैर तो हैं, मेहनत तो कर सकता है। 'हां आदेश दो, जरूर करूंगा।' क्राफर्ड ने कहा—पुस्तक अपने पास रख, तीन दिन

तक मेरे खेत में कठिन काम कर। पुस्तक की कीमत वसूल हो जाएगी, फिर पुस्तक पर तेरा अधिकार हो जाएगा। अब्राहिम ने प्रसन्नतापूर्वक खेत में तीन दिन तक कठोर परिश्रम किया। इससे मालिक खुश हो गया। चौथे दिन उसे पुस्तक दे दी। अब्राहिम खुशी से नाचता हुआ घर लौटा। बहन ने पूछा, आज इतने ज्यादा प्रसन्न क्यों हो? अब्राहिम ने बताया कि मेहनत तो तीन दिन तक बहुत करनी पड़ी मगर मुझे इसके ऐवज में अनमोल पुस्तक मिल गई। मैं इसे पढ़कर इसी तरह का जीवन जीऊंगा और महान् बन सकूंगा।

ये था उस बालक का शिक्षा, शिक्षा के साधनों के प्रति अगाध प्रेम, जिसने उस छोटे से बालक को अंततः अमेरिका का राष्ट्रपति बना दिया।

स्वाध्याय के प्रेम का मतलब पुस्तकों से प्रेम करना भी होता है, स्वाध्याय देने वाले गुरुओं से प्रेम करना भी होता है, जो स्वाध्याय प्रेमी छात्र-छात्राएं हैं, उनके प्रति प्रेम करना भी स्वाध्याय-प्रेम का हिस्सा है।

सेठ ज्वाला प्रसाद जी ने 32 आगमों का प्रकाशन करवाया। उसे भारत भर के स्थानकों में भिजवाया। यह अपने किस्म की स्वाध्याय सेवा है। चांदनी चौंक की बहन नगीना देवी ने हजारों-2 पुस्तकें साधु-सतियों को बहराई है। अन्नदान की तरह पुस्तक दान का महत्त्व जैन परंपरा में रहा है। विदेशों में तो इसकी व्यवस्थित प्रथा रही है। आप में से अधिकांश लोग Andrew Carnegie के नाम से परिचित हैं। दानवीरों में उसका नाम अग्रिम पंक्ति में आता है। उसका बचपन घोर गरीबी में बीता था। उसके पिता जुलाहे का धंधा करते थे। एण्ड्रयू को पिट्सवर्ग की एक Cotton Factory में नौकरी करनी पड़ी। वहां वह गंदे पुर्जो को साफ करता था। उस फैक्टरी के पास ही किसी दानवीर ने निःशुल्क पुस्तकालय खोल रखा था। बालक कार्नेगी उस लाइब्रेरी में प्रतिदिन एक पुस्तक ले आता और पढ़कर वापस कर देता। इस तरह स्वाध्याय के शौक के कारण उसने 700 पुस्तकें पढ़ ली। गरीबों के

बच्चों में मैंने पढ़ने की गहरी ललक देखी है जबकि अमीरों के बच्चे तो गुलच्छर्रे उड़ाते रहते हैं। उन्हें पढ़ाई की बजाय अपनी तड़क-भड़क में ज्यादा ध्यान रहता है। कार्नेगी जानता था कि मैं जितनी पढ़ाई करूंगा, वही मेरी पूंजी बनेगी। पुस्तकें पढ़-पढ़कर उसे विविध विषयों का ज्ञान हो गया और अपने ज्ञान की बदौलत उसने रेलवे में अकाउन्टैण्ट की नौकरी हासिल कर ली। पुराने समय में नौकरी के लिए सर्टिफिकेट का महत्त्व नहीं होता था। आदमी की योग्यता के अनुसार उसे जिम्मेदारी मिल जाती थी। धीरे-2 अकाउण्टैण्ट से तरक्की करते-2 कारनेगी मैनेजर के पद तक जा पहुंचा। एक मित्र ने सलाह दी कि नौकरी छोड़ो और किसी कंपनी से जुड़ जाओ। सलाह जंच गई और उसने एक स्टील कंपनी के शेयर खरीद लिए। बाद में उस कंपनी में मैनेजर तक बन गया। उम्र बढ़ती जा रही थी और वह कुछ समाज के लिए करने की तड़प मन में लिए बैठा था। 60 साल की आयु में उसने फैसला लिया और अपने सारे शेयर बेच दिए। जिससे उसको 53 करोड़ डालर मिले। उस धन को उसने अमेरिका के फ्री पुस्तकालयों के लिए दान में लगा दिया। न्यूयार्क में उसके नाम से विशाल लाइब्रेरी बनी। उसने एक बार कहा था, 'अपने पड़ोसी की 700 पुस्तकें पढ़ने से मेरा जीवन सुखी और समृद्ध बना है तो मेरा कर्तव्य है कि मैं भी देश की सेवा पुस्तकालय खोलकर करूं।' ज्ञान स्वपर[1] प्रकाशक होता है। इसका अभिप्राय ये भी होता है कि जो व्यक्ति स्वयं ज्ञान का जगमगाता दीप बन गया है। वह औरों के बुझे दीपकों को जगमगाने की क्षमता भी प्राप्त कर लेता है।

उत्तराध्ययन के 29वें अध्ययन में स्वाध्याय का फल बताते हुए भगवान् ने कहा है **'सज्झाएणं णाणावरणिज्जं कम्मं खवेइ।'** स्वाध्याय से ज्ञानावरणीय कर्म का क्षय होता है। यदि किसी जीव को ऐसा महसूस हो रहा हो कि मेरा ज्ञानावरणीय कर्म बहुत प्रगाढ़ बंधा हुआ है। उसका कर्तव्य बनता है कि स्वाध्याय में जुटा रहे। वह आत्मा अपनी लगन से एक न एक दिन अवश्य कामयाब होगी।

1 स्वयं को तथा दूसरों को रोशन करने वाला

करत-करत अभ्यास के जड़मति होत सुजान।
रसरी आवत जात तें सिल पर परत निशान ॥

कवि कालिदास के संबंध में किंवदन्ती है कि उनका विद्योत्तमा से विवाह हुआ। उससे पूर्व वह बिल्कुल मूढ़ और गंवार माना जाता था। किंतु बाद में अपनी पत्नी की प्रताड़ना झेलकर इतनी गहरी पढ़ाई की कि विश्व के महान् कवियों में उसको अग्रणी स्थान मिला।

दशवैकालिक सूत्र में कहा है–

'निद्दं न बहु मन्नेज्जा सप्प हासं विवज्जए,
मिहो कहाहिं न रमे सज्झायम्मि रओ सया ॥'

ज्ञान के इच्छुक व्यक्तियों को नींद की अधिकता छोड़नी होगी, हंसी-मजाक से बचना होगा तथा आपसी चर्चाओं पर ब्रेक लगाकर स्वाध्याय में चित्त टिकाना पड़ेगा।

गुरु के कठोर अनुशासन में रहकर ज्ञानाभ्यास करने वाला साधक ही आगमों का तलस्पर्शी ज्ञाता बनता है। स्थानांग में कहा है–

'तओ अवायणिज्जा पण्णत्ताः– अविणीए,
विगय पडिबद्धे, अविओसिय पाहुड़े।'

तीन दुर्गुण जिन विद्यार्थियों में होते है, उन्हें गुरु भगवंत विद्यादान से वंचित रखते हैं।

1. गुरु की विनय नहीं करने वाले,
2. स्वादिष्ट भोजन के इच्छुक,
3. जो पारस्परिक झगड़ों को शांत नहीं होने देते।

इसके ठीक विपरीत जो विद्यार्थी गुरु की विनय करते है, खाने-पीने के शौकीन नहीं है तथा कलह को शांत रखते है, वे स्वाध्याय के अधिकारी होते हैं।

बगदाद के एक मदरसे में उस्ताद फर्राह अपनी गद्दी पर बैठे थे। उनके सामने दो खूबसूरत बालक फर्श पर बैठे थे। मौलवी जी उन्हें पढ़ा रहे थे और वे ध्यान से पढ़ रहे थे। थोड़ी देर बाद मौलवी जी खड़े हुए और बोले, 'भई, मेरी जूतियां उठा लाओ।' जरा बाहर जाऊंगा। फौरन दोनों बालक जूतियां उठाने दौड़े। दोनों एक साथ जूतियों के पास पहुंचे। अब उन दोनों में इस बात को लेकर विवाद हो गया कि कौन जूतियां उठावे। बड़े का दावा था कि मैं बड़ा होने की वजह से उठाऊंगा। छोटा छोटे होने की दलील देकर जूतियां उठाना चाहता था। फिर बड़े ने ही समझदारी का परिचय देते हुए कहा, देखो भाई, झगड़ने की क्या जरूरत है, एक जूती आप उठा लो, दूसरी मैं उठा लूंगा। झगड़ा खत्म हो जाएगा। इस तरह दोनों भाइयों ने मौलवी की जूतियां उठाई और अपने उस्ताद को पहना दीं। ये दोनों बालक कोई साधारण शागिर्द नहीं थे। बगदाद के खलीफ़ा मामूं रसीद के बेटे थे। खलीफ़ा मुसलमानों का सबसे बड़ा बादशाह कहलाता है। खलीफ़ा बादशाह से बड़ा होता है क्योंकि बादशाह के पास सिर्फ़ हकूमत ही होती है जबकि खलीफ़ा के पास हकूमत के साथ मज़हबी ताकत भी होती है। मामूं रसदी को तख्त और मस्ज़िद दोनों जगह सत्ता हासिल थी। उसे मालूम हुआ कि मौलवी ने दोनों शहजादों से जूतियां उठवाई है तो उसने फौरन मौलवी को दरबार में बुलवा लिया। मौलवी के तो होश उड़ गए। डरते-2 खलीफ़ा के पास गया। मगर खलीफ़ा बड़े प्रेम से बोले 'मौलवी साहब, एक बात पूछता हूं, सच बताइए, दुनिया में सबसे बड़ा कौन है और दुनिया में ज्यादा इज्ज़त किसकी है?' मौलवी फ़र्राह को बात समझ नहीं आई। फिर भी मौके की नज़ाकत के मुताबिक बोले—हुजूर, आज तो दुनिया में सबसे बड़े आप हैं और सबसे ज्यादा इज्ज़त भी आपकी है, क्योंकि आप सारी जनता के खलीफ़ा हो।'

खलीफ़ा ने बात काटते हुए कहा, 'नहीं, आज तो दुनिया में उस्ताद फ़र्राह सबसे बड़े है इज्ज़त भी उस्ताद फ़र्राह की है' क्योंकि खलीफ़ा के प्यारे शहजादे भी उनकी जूतियां उठाते हैं। मौलवी साहब डरकर

पसीने-पसीने हो गए। कुछ कहते नहीं बन रहा था। फिर हाथ जोड़कर गिडगिड़ाने लगे, 'हजूर, मैंने ये बड़ी भारी गलती की, अल्लाह के नाम पर मेरा कसूर माफ कर दीजिए।

खलीफ़ा ने हंसकर कहा, 'आप डरते क्यों हैं? जनाब! मैंने कोई झूठ नहीं कहा है। आप मेरे बच्चों के उस्ताद हैं। इसलिए आप ही बड़े हैं और आपकी इज्जत सबसे ज्यादा है। सच मानिए, मैं इस बात से बहुत खुश हूं कि आप मेरे बच्चों से अपनी खिदमत करवाते हैं और वे खुशी-2 आपकी खिदमत करते हैं। 'उस्ताद, मां-बाप और बादशाह की खिदमत करने से आदमी की इज्जत बढ़ती है। मेरे बच्चों ने आपकी जो खिदमत की है, इससे उनकी ही नहीं, मेरी भी इज्जत बढ़ी है।' उसके बाद खलीफ़ा ने उस्ताद फ़र्राह को तथा दोनों शहजादों को दस-2 हजार दिरहम इनाम में दिए। दिरहम चार आने का सिक्का होता था। इस तरह विनय के संस्कार जिन बालकों में प्रारंभ से डाल दिए जाते हैं, वे जिंदगी भर गुरुओं की कृपा के पात्र बने रहते हैं। बालकों के भविष्य निर्माण में गुरु के अलावा माता-पिता का भी बहुत बड़ा योगदान होता है। माता-पिता बच्चों में विनय के संस्कार देते हैं तो गुरु उनमें ज्ञान की विपुल मात्रा उंड़ेल देते हैं। विद्या से विनय की और विनय से विद्या की शोभा होती है। बालक के विषय में एक बड़ी प्यारी कविता है, कवि ने लिखा है—

बालक, सिर्फ बालक ही नहीं है, पूरा भविष्य है,
कर्णधार है, समाज और राष्ट्र का।
मगर उसे चाहिए सहारा सुसंस्कारों के आधार का,
खिलौना प्यार का, आलंबन आदर्श परिवार का।
मत बनाओ, इसे गुलाम टी.वी., चित्रहार का।
उसे स्वतंत्र रखो, स्वच्छन्द नहीं, प्रखर रखो, मंद नहीं।
उसे नैतिक चारित्रिक कहानियां सुनाओ,
जीवनियां बताओ, महापुरुषों की।

प्रकृति का सौंदर्य दिखाओ।
विनय-शालीनता और धैर्य सिखाओ,
साहस और शौर्य प्रगटाओ,
उसे पढ़ने दो, खेलने दो, पवित्र परिवेश में,
बचपन के झूले में झूलने दो।
पलने दो, प्रभात-पुष्प की भांति खिलने दो,
दीप अगरबत्ती की तरह जलने दो,
फिसलने पर खुद-ब-खुद संभलने दो,
मनुष्यता के पावन पथ पर चलने दो, राष्ट्रीयता में मिलने दो।
हे अभिभावको, नन्हें पौधे को, यूं ही मत झुठलाओ,
बालक को, संपूर्ण सच्चा इंसान बनाओ।
आज का बालक ही तो, कल समाज की गाड़ी का चालक बनेगा,
जन-जन का पालक बनेगा।

पुराने समय में माता-पिता, अभिभावकों तथा गुरुओं के मन में अपने बच्चे के प्रति जो स्नेह और ममता भाव होता था, आज कहां रह गया है? और इसी तरह बालकों में अपने बड़ों को प्रति जो श्रद्धा और विनय भाव होता था, आज नदारद हो रहा है। यों तो देने का लेना है, आप बच्चों को जो दोगे, वही वापसी में उनसे ले लेना।

गांधीजी में अपने पिता जी की सेवा की इतनी तीव्र भावना थी कि उन्होंने अपने स्कूल मास्टर से पी.टी. की छुट्टी ले ली थी। हालांकि, सारे स्कूल में हर बच्चे को पी.टी. लेनी जरूरी थी, परंतु मोहनदास की सेवा भावना को देखते हुए उसे छूट मिल गई थी। गांधी जी बाद में भारतीय राजनीति के अग्रणी नेता बने परंतु उन्होंने अपनी धार्मिक वृत्ति को कभी मंद नहीं पड़ने दिया। वे अक्सर कहा करते I wear the garb of a politician but at heart I am a religious person. उनके संपर्क में आने वाला हर इंसान इस बात का कायल था। जमनादास बजाज अपने युग में बड़े उद्योगपति थे। कांग्रेस के कुबेर कहलाते थे।

उनका सुपुत्र कमलनयन बजाज सीलोन में पढ़ाई करने जा रहा था। जमनादास जी ने कहा, सीलोन जाने से पूर्व बापू से आशीर्वाद लेकर जाना। कमलनयन गांधी जी के पास गया। अपनी भावना दर्शाई कि मैं अगली पढ़ाई के लिए सीलोन जा रहा हूं, आपका आशीर्वाद चाहिए। उस रोज गांधी जी का मौन दिवस था। इसलिए कमलनयन महादेव देसाई जो उस समय गांधी जी के सैक्रेटरी थे से मिला। उन्होंने गांधी जी से युवक की भावना जताई। तब गांधी जी ने 12 बातें लिखकर दी जिसे देखकर महादेव भाई ने कहा था कि तुम अपने साथ एक बहुत बड़ा खजाना ले जा रहे हो। बापू ने संक्षेप में सब कुछ कह दिया है। बेशक, तुम इन बातों पर गंभीरता से विचार करोगे ही। यदि तुम इनको याद रखोगे और इन्हें अपने जीवन में निभाओगे तो तुम्हें किसी बात की चिंता की जरूरत नहीं होगी।' यदि देखा जाए तो ये बातें एक विद्यार्थी के लिए बहुत कुछ दे देती हैं—

1. कम बोलना,
2. सबकी सुनना पर जो ठीक हो उसे करना,
3. हर मिनट का हिसाब रखना और जब-जब जो-जो करने का, निश्चय हो उसे उसी समय करना,
4. गरीब के समान रहना, धन का अभिमान कदापि नहीं करना,
5. पाई-पाई का हिसाब रखना,
6. ध्यानपूर्वक पढ़ाई करना,
7. कसरत करना,
8. मिताहारी रहना,
9. रोज नामचा लिखना (डायरी),
10. इस बात का ध्यान रखना कि बुद्धि की तीव्रता की अपेक्षा हृदय का बल करोड़ों गुणा बड़ा है इसे समझने के लिए गीता और तुलसीदास के मानस का मनन आवश्यक है। भजनावली (आश्रम भजनावली) रोज पढ़ना।

11. तुम्हारी सगाई हो गई है, इससे तुम कील से बंध गए हो, अन्य स्त्री के प्रति मन नहीं जाने देना।
12. प्रति सप्ताह मुझे पत्र लिखकर अपने काम का हिसाब दिया करना।

इस प्रकार के उत्तम संस्कार जिस बालक और युवक को मिले हों, वे संसार में कहीं भी जाएं, भटक नहीं सकते। देश के प्रसिद्ध धनाढ्य घराने में पैदा होने वाले इस युवक ने अपने जीवन को सदा संयमित रखा। ये परिवार के लिए दुःखद रहा कि वह लंबी उम्र नहीं पा सका और युवावस्था में ही काल कर गया।

स्वाध्यायशील के लिए जिह्वेन्द्रिय को वश में करना भी आवश्यक है। हमारे गुरुदेवों ने अंतिम समय में जो शिक्षाएं हमें दी थी उनमें से एक शिक्षा ये भी थी कि जीभ के चटोरे नहीं बनना वर्ना एषणा समिति में दोष लगेंगे। मुनि की आहार चर्या तो गृहस्थों पर आधारित है, जैसा मिले वैसा ही खाना पड़ेगा। यदि मन पसंद या जीभ की पंसद के अनुसार खाना चाहोगे तो कैसे गुजारा चलेगा। पुराने युग में गुरुकुलों में गरीब-अमीर सब तरह के विद्यार्थी पढ़ने आते थे और सबके लिए एक सरीखा भोजन मिलता था। कोई सेठ साहूकार का बच्चा सोचे कि मैं तो अपनी मर्जी का भोजन करूंगा। फिर तो उसे गुरुकुल से निष्कासित ही होना पड़ता था। स्वतंत्रता-प्राप्ति के पूर्व भी देश के अनेक छात्रावासों की यही व्यवस्था थी। डॉ. जाकिर हुसैन, जो देश के राष्ट्रपति पद पर पहुंचे, अपने जमाने के प्रमुख शिक्षाविद् थे। उन्हें जामिया मिलिया कॉलेज का प्रिंसीपल नियुक्त किया गया था। कॉलेज में हॉस्टल था। एक बार की बात है कि उन दिनों छात्रावास में रहने वाले बालकों के लिए Mess में बैंगन की सब्जी बनती थी, क्योंकि और सब्जियों की तुलना में बैंगन सस्ते पड़ते थे। कुछ बच्चे तो शौक से खा लेते, पर ज्यादातर को बैंगन पसंद नहीं थे। रसोइया बार-बार वही सब्जी बनाता और छात्र भरे के भरे कटोरे बिना खाए, बिना चखे छोड़ जाते। रसोइए

ने कहा, या तो खाया करो, नहीं तो प्रिंसीपल साहब को शिकायत की जाएगी। विद्यार्थियों ने दूसरा तरीका ढूंढा। वे थोड़ी सी सब्जी चख लेते और बाकी झूठी छोड़ देते। अब वे भी आरोप नहीं लगा सकता था कि फलां-फलां विद्यार्थी ने सब्जी नहीं खाई। झूठी सब्जी के कटोरे बड़े बर्तन में उलट दिए जाते। बर्बादी का समाचार आखिर डॉ. जाकिर हुसैन तक भी पहुंचा। वे जबरदस्ती कर भी नहीं सकते थे क्योंकि गांधी जी के निकट रहने से अहिंसक विचारधारा रखते थे। एक दिन वे खुद भोजनालय में गए। जिस दिन बैंगन की सब्जी बनी थी और बच्चे अपनी-अपनी सब्जी जूठन-पात्र में फैंककर चलने की तैयारी में थे। कॉलेज के सर्व सम्माननीय डॉ. हुसैन आकर बोले—आज तो हम भी यही भोजन करेंगे। थाली परोस दी गई, एक कटोरा बैंगन की सब्जी का भी रख दिया। उन्होंने कहा, ये सब्जी का कटोरा तो उठा लो। बच्चे मन ही मन खुश हुए कि आगे से बैंगन की समस्या खत्म हो जाएगी। लेकिन प्रिंसीपल साहब ने कुछ और कहा, 'जो सब्जी जूठन के बर्तन में पड़ी है, उसका एक कटोरा हमें दे दो। सुनते ही छात्रों में सन्नाटा छा गया। हमारी जूठन प्रिंसीपल खाएंगे। किसी ने जूठी सब्जी नहीं दी तो उन्होंने खुद उठकर एक कटोरा भर लिया। लड़के गिड़गिड़ाने लगे, नहीं, प्रिंसीपल साहब आप हमारी जूठन नहीं खाएं, हमसे देखा नहीं जाएगा। मगर वो तो खाते रहे। उन्होंने एक बात कही— 'हमारे देश में लाखों लोग ऐसे हैं जिन्हें जूठन भी नहीं मिलती, मुझे कम से कम जूठन तो मिल रही है।' बच्चे चरणों में गिर गए। कहने लगे आगे से हम ऐसी बर्बादी नहीं करेंगे।' धीरे-धीरे बच्चों को उसमें स्वाद आने लगा।

कहने का भाव ये है कि जिसे ज्ञान सीखना है उसे अपने स्वाद को भी जीतना होगा। स्वाध्याय का जिन्हें रस आ जाता है वे भोजन के रस को भूल जाते हैं। जो भी स्वाध्याय का सहारा लेंगे, उनका यहां भी कल्याण होगा, आगे भी कल्याण होगा।

7. ध्यान तक पहुंचना

साहू गोयम पण्णा ते छिन्नो मे संसओ इमो।
नमो ते संसयातीत सव्व सुत्त महोदही ॥

पूज्य गुरुदेवों की कृपा से जो कुछ सीखा है कुछ देर आपके समक्ष रखेंगे। भव्य जीव धर्म आराधन करें, रत्नत्रय को उज्ज्वल करें, यही हमारी कोटिशः मंगलकामनाएं हैं।

तीर्थंकर भगवंतों की वाणी—

'मा य चण्डालियं कासी बहुयं मा य आलवे,
कालेण य अहिज्जित्ता तओ झाइज्ज एगओ ॥'

हे धर्म के मार्ग पर चलने वाले साधक, अपने क्रोध को प्रचंड मत बनने दो तथा मर्यादा से ज्यादा मत बोलो, समय पर स्वाध्याय करो, फिर अकेले में ध्यान करो।'

भगवान् महावीर ने 12½ साल तक आत्मसाधना का दीप अखंड प्रज्वलित रखा था, उन्होंने जो-जो कठोर तपस्याएं की, उनका रोम-हर्षक विवरण कथा साहित्य में उपलब्ध होता है, आगमों में और खास तौर से आचारांग सूत्र में उनके बाह्य तप का विशेष वर्णन मिलता है, लेकिन तपस्या के साथ-साथ उन्होंने ध्यान की जितनी गहराई को छूआ था उसका आगमों में उल्लेख होते हुए भी आजकल उसकी चर्चा बहुत कम होती है, उनकी तपस्या ध्यान से अनुप्राणित[1] थी, आज इस तथ्य को पहचानना परम आवश्यक हो गया है। इसी तरह भगवान् महावीर ने अपने संघ के साधु-साध्वियों के लिए दिन का और रात का एक-एक पहर ध्यान करने के लिए निर्धारित किया है। स्वाध्याय के साथ-साथ ध्यान में भी मन को लगाना साधना का अंग रहा है।

---

1 भरपूर

जितनी आध्यात्मिक उपलब्धियां दो प्रहर के स्वाध्याय से हो सकती हैं, उतनी या उनसे भी अधिक उपलब्धियां एक प्रहर के ध्यान से संभव है। स्वाध्याय में बाहरी साधनों से मन को साधा जाता है जबकि ध्यान में आंतरिक साधना से मन को साधा जाता है। स्वाध्याय में विस्तार ही विस्तार है और ध्यान में गहराई ही गहराई है। इसलिए हमारे यहां ज्ञानी से ध्यानी को बड़ा दर्जा दिया गया है।

सामायिक-प्रतिक्रमण आदि सभी धर्म क्रियाओं में जब हम कायोत्सर्ग करते हैं तो उससे पहले तस्स उत्तरी करणेणं का पाठ पढ़ते हैं। उसके अंत में तीन शब्द बड़े कमाल के हैं जो कायोत्सर्ग का समूचा खांका हमारे सामने खोल देते हैं। **'कायं ठाणेणं मोणेणं झाणेणं अप्पाणं वोसिरामि'** मैं कुछ देर के लिए काया को स्थिरता, वाणी को मौन तथा मन को ध्यान की प्रक्रिया से गुजारने जा रहा हूं। इस प्रक्रिया से न केवल शरीर को शिथिल ही किया जाता है अपितु वाणी को विश्राम भी दिया जाता है तथा मन को निश्चल भी किया जाता है। इस तरीके से मन पर लगी हुई चोटें Heal हो जाती हैं, मन फिर से तरोताजा और Fresh हो जाता है।

Aristotal (अरस्तू) पश्चिम के तीन सबसे बड़े दार्शनिकों में से एक हुए हैं। जैसा कि दार्शनिकों की धारणा है कि चिन्तन-मनन और अध्ययन से परमात्म-तत्त्व को पकड़ा जा सकता है। वे जिंदगी भर उस अंतिम तत्त्व को समझने का प्रयत्न करते रहे। इसी धुन में वे एक दिन समुद्र तट पर बैठे हुए विचार मग्न थे। वहीं एक आदमी गड्ढा खोदकर चम्मच से सागर का पानी उसमें भर रहा था। अरस्तू ने सोचा, यह आदमी बार-बार चम्मच में समुद्र का पानी भर रहा है और गड्ढे में डाल रहा है। पूछूं कि ऐसा क्यों कर रहा है? अपनी जिज्ञासा लेकर वह उस आदमी के पास आया और पूछने लगा—बन्धु, आप क्या कर रहे हैं? उस आदमी ने उत्तर दिया, मैं इस गड्ढे में समुद्र को भर रहा हूं और इस चम्मच से समुद्र को खाली कर दूंगा।' उस आदमी के पागलपन पर

अरस्तू को हंसी आ गई और उसने कहा 'कहीं सुना है कि सागर को चम्मचों से तोला गया हो या गड्ढों में भरा गया हो? क्यों उधेड़बुन में जीवन नष्ट कर रहे हो।' वह सनकी आदमी भी हंसा और बोला, 'मुझे लगता है कि संसार के सबसे बड़े पागल तुम हो जो सत्य के विराट् महासागर को विचारों की चम्मच में भरने की कोशिश कर रहे हो। विराट् अस्तित्व को तुम विचारों से कैसे तोलोगे, मैं तो कुछ ही समय बर्बाद कर रहा हूं पर तुम तो सारा जीवन ही खो रहे हो।' उस दिन के बाद अरस्तू ने उस आदमी को ढूंढने की बहुत कोशिश की पर वह नहीं मिला लेकिन उसके संक्षिप्त से संपर्क से अरस्तू को ये तो भान हो गया कि विचार तो मन की एक तरंग है। विचारों के द्वारा संपूर्ण सत्य को कभी प्राप्त नहीं किया जा सकता। दूसरी बात केवल सोचने से परमात्मा नहीं मिलेगा, हम कितना ही सोचते रहें, आत्मदर्शन नहीं होगा, इसके लिए गहरी साधना करनी पड़ेगी।

इसी सच्चाई को उपनिषद्कारों ने तथा जैन आगमकारों ने स्वीकार किया है। **'नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन'** आत्मतत्त्व की प्राप्ति में प्रवचन, बुद्धि और पढ़ाई कारगर उपाय नहीं है। अपितु **'आत्मा वै द्रष्टव्यः, मन्तव्यः, निदिध्यासितव्यः'** आत्मदर्शन के लिए दर्शन, मनन और निदिध्यासन की आवश्यकता है अर्थात् ध्यान के माध्यम से आत्मा की अनुभूति संभव है।

आचारांग सूत्र, प्रथम श्रुत स्कन्ध पंचम अध्ययन के अंतिम सूत्रों में लिखा है—

'सव्वे सरा नियट्टंति, तक्का तत्थ न विज्जइ,
मई तत्थ न गाहिया ॥'

उस आत्मा के दरवाजे पर हर स्वर पहुंचते-2 वापस लौट आता है। तर्क का अस्तित्व खत्म हो जाता है तथा बुद्धि का प्रवेश वहां वर्जित

है। कुल मिलाकर आगमकारों का संकेत है कि ध्यान के जरिए ही हम अपने मौलिक स्वरूप की पहचान कर सकते हैं।

हम जब मैट्रिक में पढ़ते थे तब हमारे विज्ञान के अध्यापक ने एक खोज करवाई थी। उन्होंने एक आतशी शीशा लिया और सूर्य की रोशनी के सामने कर दिया। नीचे कुछ कागजों का पुलिन्दा रख दिया। थोड़ी देर तक सूर्य की किरणें शीशे से गुजरती हुई Concentrate हो गई और कागज जलने लगे। फिर उन्होंने हमें समझाया, 'हमारी मानिसक ऊर्जा बिखरी हो तो कोई कार्य संभव नहीं होता लेकिन जब हमारी मानसिक ऊर्जा एकाग्र हो जाती है तो हम अपने दोषों को जला देते हैं तथा सद्गुणों का विकास कर लेते हैं।

मन की एकाग्रता का नाम ही ध्यान है। ये ध्यान ही अंतरात्मा के उत्थान का श्रेष्ठ उपाय है।

बड़ी सुंदर कविता है, जिसमें कवि जीवन के शाश्वत प्रश्नों का समाधान कैसे मिलता है, उसका जिक्र करता है–

जीव विज्ञान, वनस्पति विज्ञान, भूगोल, खगोल,
पाताल-अंतरीक्ष, भूत-भविष्य, सबका मैं ज्ञाता हूं।
मैं कौन हूं, कहां से आया हूं, कहां जाऊंगा।
मेरी क्षमता क्या है? मेरे में विष कितना है?
कितना अमृत है? मेरा ध्येय क्या है? मैं कहां जा रहा हूं?
मोह, मान, माया, क्रोध-लोभ-अहम्
राग-द्वेष सब मेरे साथी हैं।
फिर ये मेरे पतन के, कारण क्यों बनेंगे?
मुझे भला काल क्यों ग्रस्त करेगा, मैंने उसका क्या बिगाड़ा है?
यह अनगिनत प्रश्न मेरे हृदय पटल पर हैं। पर समाधान कहां?
पूर्व संस्कार से सद्गुरु के दर्शन हुए।
दबी हुई चिंगारी को गुरु ने ध्यान की हवा दी,
जिससे बुझते अंगारे, शोले बन गए।

हृदय आलोक से जगमगा गया। निज के अंदर झांककर देखा।
आत्मा के प्रकाश को कषायों ने ढक दिया था,
एक झटका लगा, बंधन टूटे।
बून्द बून्द न रहकर सागर में समा गई।
साक्षात् आत्म ज्योति जल रही थी, आलोकित प्रकाश था,
उस विराट् के दर्शन हुए, जो शाश्वत सत्य है।
मैं अब मैं नहीं रहा। कुछ और ही हो गया।

यह सब किसने किया? गुरु ने या भगवान् ने? उत्तर यही है कि गुरु और भगवान् तो मार्गदर्शन ही करते हैं। उस मार्ग पर चलना या न चलना हर आत्मा पर निर्भर है। भगवान् के द्वारा बताए हुए उपायों में ध्यान एक उत्कृष्ट उपाय है।

जो धर्म भक्तिमार्ग को अपनाकर चले, उन्होंने अनन्य प्रेम के द्वारा आत्म कल्याण किया और जो धर्म, ज्ञानमार्गी या चारित्रमार्गी रहे, अपने कल्याण के लिए उन्होंने ध्यान का सहारा लिया। प्रेम भी अपने उत्कृष्ट रूप में परम तक ले जाता है और ध्यान भी अपनी उत्कृष्टता में परम तक पहुंचा देता है। ध्यान एक तरीका है, प्रेम दूसरा। वहां तक पहुंचने में दोनों ही सहायक हैं। लेकिन हम लोगों की स्थिति ही बड़ी विचित्र है, हमें न तो ध्यान से कुछ लेना है, न प्रेम से। न हम भक्तिमार्गी है, न ज्ञानमार्गी है। हम सब स्वार्थमार्गी है। छोटे-2 स्वार्थों से घिरे रहते हैं। वे स्वार्थ पूरे हो जाएं वही हमारा ध्येय है, वही हमारा ध्यान है। वही हमारी पूजा है, वही हमारी भक्ति है। हम उसी से जुड़ जाते हैं, जो हमारी स्वार्थपूर्ति में सहायक होता है।

श्रीमान् जी ने पप्पू की मम्मी से पूछा, ऐ भागवान, इस शीशी में किस तरह का शैम्पू है? श्रीमती जी बोली, एजी ये शैम्पू की शीशी नहीं है, इसमें तो गोंद है। अब श्रीमान् जी झल्लाए और कहने लगे, 'तभी तो टोपी मेरे सिर से उतर नहीं रही।'

जब तक स्वार्थों की गोंद सिर पर लगी रहेगी, तब तक दुःखों की टोपी उतर ही नहीं सकती।

मानव जाति के दुःखों का निवारण ध्यान से होगा। उस ध्यान के चार भेद हैं। आर्तध्यान, रौद्रध्यान, धर्मध्यान और शुक्लध्यान। आर्तध्यान और रौद्रध्यान तो दुःखों को और बढ़ाने वाले हैं। केवल धर्मध्यान तथा शुक्लध्यान ही दुःखों का विनाश करते हैं।

स्थानांग सूत्र में धर्म ध्यान के चार भेद फरमाए हैं—आज्ञा विचय, अपाय विचय, विपाक विचय तथा संस्थान विचय।

जब कोई साधक तीर्थंकरों की आज्ञाओं पर अपनी चित्तवृत्ति को एकाग्र कर देता है तब भगवान् की आज्ञाएं उस साधक के रोम-2 में बस जाती हैं। उसका अधिकतर समय प्रभु की आज्ञा के प्रति आकृष्ट हो जाता है। लेकिन फिर वही सवाल है कि आज हमें किस की आज्ञा का ध्यान है? हम अफसरों की आज्ञा मान लेते हैं, माता-पिता या बेटे-बेटियों की आज्ञा को निभा लेते हैं पर भगवान् की आज्ञा को कितना निभाते हैं?

कुछ बच्चे आपस में बात कर रहे थे। पहला बोला-मेरे पिता जी बड़े ऊंचे वकील हैं। वे वकालत का पेशा करते हैं। पर तुम बताओ कि तुम्हारे पिता जी क्या करते हैं? दूसरा बोला-मेरे पिताजी दलाली का धंधा करते हैं। तीसरा बोला-मेरे पापा व्यापार करते हैं। चौथा बोला-मेरे डैडी Shares का काम करते हैं। पांचवां चुप रहा। सबने उस पर दबाब डाला और पूछा तू भी बता, तेरे पापा क्या करते हैं? वह बोला, 'मेरे पापा वही करते हैं जो मम्मी कहती हैं।' ज्यादातर लोगों के साथ यही हो रहा है, उन्हें न लेना धर्म से, न गुरु से और न लेना शास्त्रों की आज्ञा से, उन्हें तो बस दुनियादारों की आज्ञा से मतलब है।

'आणाए मामगं धम्मं' आज्ञा में ही मेरा धर्म छिपा हुआ है। ये दृष्टिकोण जिनका बन जाता है, उन्हें इतनी गहरी शान्ति और समाधि

मिलती है कि वे बयान नहीं कर सकते। अपने अहं को गलाकर प्रभु और गुरु की आज्ञा में ढलने वाले को असमाधि किस ओर से मिलेगी? क्योंकि असमाधि का जन्म अहंकार से होता है। आज्ञा पालन वही करेगा जो अहंकार को कुचल देगा। **'वयमाराहइ'** विनयवान् वह है जो गुरु वचनों की, गुर्वाज्ञा की आराधना करता है। यदि गुरु दो विरोधी आज्ञाएं भी दे दें तो भी शिष्य उनका विरोध नहीं करेगा।

आचार्य सिंह गिरि जी ने अपने शिष्यों, आर्य समित एवं धनगिरि को आज्ञा दी कि आज तुम्हें भिक्षा में सचित्त अचित्त या मिश्र जो भी मिले, ले आना। उन्हें गुरु की आज्ञा में दोष ही नहीं दिखाई दिया। तहत्त कहा और चल दिए। जब सुनन्दा के घर पहुंचे तो उसने 6 महीने के रोते हुए बालक को देने की इच्छा प्रकट की। तब उन्हें ध्यान आया कि गुरुदेवों ने पहले ही हमें अनुमति दे दी थी और वे उस बालक को गुरुचरणों में ले आए। आज्ञा पालन की ऐसी मानसिक तत्परता जब गहन स्तरों पर पहुंच जाती है तो आज्ञा विचय धर्म ध्यान बन जाता है। अपाय विचय धर्मध्यान के लैवल पर जीने वाले साधक पाप की प्रत्येक क्रिया के प्रति सावधान और जागरूक हो जाते हैं। उन्हें पल-2 में ध्यान रहता है कि मेरे मन में कोई भी अशुभ वैचारिक तरंग पैदा न हो। कषायों का हल्का सा भी अंश मेरी चेतना को दूषित न करे। बड़ा गहरा होश उन्हें मिल जाता है जिसके द्वारा वे अंदर की क्रिया-प्रतिक्रिया का विश्लेषण करते रहते हैं। मैं आपको एक प्रसंग सुनाऊंगा।

एक वैज्ञानिक ने सारा जीवन प्रयोगशाला में बिता दिया। निरंतर प्रयोगों से उसका अनुभव-ज्ञान प्रखर एवं निर्मल हो गया। एक दिन उसने अपने छात्रों को संबोधित करते हुए कहा 'विज्ञान में दो बातों का विशेष महत्त्व है—पहला है साहस, दूसरा है निरीक्षण। सर्वप्रथम किसी भी नए प्रयोग को करने का साहस करो Initiative लो। Risk लेने वाला व्यक्ति ही नए आयाम खोल सकेगा। दूसरे, प्रत्येक काम के प्रति, प्रयोग के प्रति सूक्ष्म निरीक्षण की क्षमता हो, कोई भी परिवर्तन आपकी

नजर से बच कर न निकल जाए। फिर उस वैज्ञानिक ने एक प्याली में अति कड़वा, तीखा और नमकीन द्रव्य लिया और बताया कि इस द्रव्य की एक बूंद भी जीभ पर रखने से वमन हो जाता है। हमें खोज करनी है कि इस द्रव्य में क्या-2 तत्त्व मिले हुए हैं? तुम्हें इसे चखने का साहस करना होगा और साथ ही ये सूक्ष्म निरीक्षण करना होगा कि मैं अपनी जीभ पर किस ढंग से इस लेप को रखता हूं। वैज्ञानिक ने अंगुलि को प्याले में डुबोया और फिर जीभ पर रखा। उस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। न चेहरा विकृत हुआ और न ही वमन हुआ। यह देख छात्रों का साहस बढ़ गया। सबने उस द्रव में अपनी-2 अंगुलि डुबोई और जीभ पर रख ली। लेकिन वे तो बहुत परेशान हो गए। सब चिल्लाने लगे, सबकी आंखों में से पानी निकलने लगा। सभी को वमन हो गया। लेकिन आश्चर्य उन्हें इस बात का था कि वे सारी प्रतिकूल प्रतिक्रिया उनके Boss पर क्यों नहीं हुई। उस वैज्ञानिक ने स्पष्ट करते हुए कहा। तुम सब साहसी हो, परंतु विज्ञान में साहस ही पर्याप्त नहीं होता, इसमें सूक्ष्म निरीक्षण की शक्ति भी जरूरी है। तुममें उसकी कमी है। जहां तक साहस का सवाल है तुम सब सफल हो पर निरीक्षण के मामले में अभी भी असफल हो। तुमने यह नहीं देखा कि मैंने जो अंगुलि प्याले में डुबोई थी, वह मैंने जीभ पर नहीं रखी। बल्कि दूसरी रखी थी, यह तुमने नहीं देखा। यह निरीक्षण क्षमता साहस से भी अधिक कठिन है। कुछ लोगों में साहस होता है पर उन्हें सफलता नहीं मिलती क्योंकि वे घटना के प्रति जागृत नहीं है, जो जितना अधिक जागृत होता है उसकी निरीक्षण शक्ति उतनी ही तीव्र होती है। जो जितना लापरवाह होता है उसकी निरीक्षण शक्ति उतनी ही मंद होती है। निरीक्षण के अभाव में केवल साहस से काम नहीं चलता। जीवन के सर्वांगीण विकास के लिए साहस और निरीक्षण दोनों का समन्वय आवश्यक है। जीवन के सर्वोच्च शिखर पर वही व्यक्ति चढ़े हैं जिन्होंने इन दोनों गुणों को अच्छी तरह विकसित किया है। जिसे विज्ञान में निरीक्षण कहा है, धर्म में उसे ध्यान नाम दिया जाता है। वे Observation कहते हैं, हम

Meditation या Awareness कहते हैं। अपाय विचय धर्म ध्यान का अभ्यास करने वाला मानव अपने भीतर उठने वाले स्वल्प से स्पन्दन के प्रति भी जागरूक हो जाता है। कोई भी हलचल उसके Notice से बाहर नहीं जाती, एक तरह से वह पूर्ण अप्रमत्त हो जाता है। इसी तरह सुख-दुःख की हर घटना को वह कर्मफल मानकर उससे अपने को अछूता रख लेता है। उसे पता लगने लगता है कि मेरे शुभाशुभ कर्म ही इन सुख-दुःख के मूल हेतु है। सुख-दुःख का संबंध केवल बाहरी घटनाओं से नहीं, अपितु उनके प्रति मानसिक रवैये से भी है। इसे ही आगमकारों ने विपाक विचय धर्मध्यान कहा है।

प्रसिद्ध विचारक T.L. Vaswani ने अपने प्रवचनों में एक घटना सुनाई थी कि नेसापुर के प्रसिद्ध संत अहमद से कुछ शिष्यों ने कहा, 'महाराज, हमें ईश्वर के किसी सच्चे भक्त के बारे में बताइए।' उन शिष्यों को अहमद ने कहा, सुनो, मेरा एक पड़ोसी बहराम था। उससे मेरी मित्रता हो गई थी। वह एक मालदार व्यापारी था। हर साल उसके कारवां लाखों का माल लादकर विदेशों में बेचने जाते थे। एक बार लुटेरों ने कारवां को लूट लिया और उसका लाखों का नुकसान हो गया। मुझे पता चला तो मैं उसके घर ढाढस बंधाने गया। शाम का समय था। सूरज डूबने को था। उसने सोचा, संत जी भोजन लेने आए होंगे? क्योंकि उन दिनों उस इलाके में अकाल भी पड़ा हुआ था। भोजन की किल्लत भी थी। उसने अपने घरेलू नौकरों से कहा कि संत अहमद के लिए भोजन लेकर आएं। मैंने कहा, बहराम, मैं भोजन लेने नहीं, बल्कि आप को लाखों का नुकसान हुआ है इस वास्ते सांत्वना देने आया हूं। बहराम बोला, ये ठीक है कि मेरा लाखों का नुकसान हो गया, मगर मैं भगवान् का कृतज्ञ हूं। डाकुओं ने मेरा माल लूटा मगर प्रभु की कृपा से मैंने किसी को नहीं लूटा। उन्होंने मेरी नश्वर संपत्ति का कुछ हिस्सा लूटा है पर मेरी शाश्वत संपत्ति के हाथ नहीं लगाया। मेरी शाश्वत संपत्ति है भगवान् और कर्म में मेरी आस्था।' हे शिष्यो, मैं उस बहराम को ईश्वर का सच्चा भक्त मानता हूं।'

मगर आज के हालात तो ये हैं कि लोग जरा सा दुःख आ जाए तो हाथ पैर फुला लेते हैं। हमारे पास आएंगे, कहेंगे—हाय, गुरु म. मर गए। अरे गुरु म. कहाँ मर गए। वे तो जिंदा हैं, मरते हो अपने कारनामों से खुद और मारते हो संतों को, गुरुओं को। ऐसे आर्त्तध्यानी आदमी धर्म ध्यान को कहां छू पाएंगे। ध्यान करने की नकल कितनी ही कर ले, मगर अन्दर से उन्हें आनन्द और खुशी हासिल नहीं होती। आज के धर्मात्मा लोगों की क्या हालत हो रही है, देख-2 कर हैरानी होती है। एक मिरासी था। पीने की भी आदत थी। एक दिन भूल कर मस्जिद में पहुंच गया। वहां पांच नमाजी मौजूद थे। उन्होंने कहा, आओ, बजू करके नमाज पढ़ें। बजू का मतलब हाथ धोने की एक विधि है। मिरासी पूछने लगा 'नमाज करने से क्या फायदा होता है?' नमाजी बोले 'नमाज पढ़ने से चेहरे पर खुदा का नूर आता है।' मिरासी को बात बड़ी अच्छी लगी। बोला 'बहुत अच्छा, अभी तो मुझे काम है पर घर जाकर जरूर पढूंगा।' अपने घर गया। पीकर सो गया। चौथे पहर उठा तो सोचने लगा कि नमाज करनी चाहिए। फिर ख्याल आया कि यदि पानी से बजू करूंगा तो नशा टूट जाएगा। नमाज पढ़नी भी जरूरी थी क्योंकि चेहरे पर खुदा का नूर उतारना था। फिर विचार आया कि पानी की बजाय मिट्टी से बजू कर लूं। यों सोचकर अंधेरे में जमीन पर हाथ मार-2 कर अपने मुंह पर फेरने लगा। इस बीच दुर्घटना ये हुई कि वहां तवा पड़ा था और वह उल्टा था। उसने तवे पर हाथ को रगड़ा फिर मुंह पर फेर कर वजू की रसम अदा की और फिर उसने नमाज पढ़ी। दिन निकलने पर प्रसन्नतापूर्वक मिरासिन[1] के पास गया, 'देख री भागवान, मैंने वजू करके नमाज पढ़ी है क्या मेरे चेहरे पर खुदा का नूर आया है?' मिरासिन बोली, 'अगर खुदा के नूर का रंग काला होता है तो घटा बनकर आया है पर अगर गोरा या कोई और रंग होता है तो जो पहले था, वह भी गया।'

---

1 मिरासी की पत्नी

कुछ ऐसा ही हाल हम लोगों का हो रहा है। सोचते हैं कि धर्म ध्यान से हमारे कर्म कटेंगे, लेश्याएं शुद्ध होंगी लेकिन दुनियादारी के तवे पर हाथ फेर-2 कर अपने दिल की लेश्याएं खराब कर रहे हें तथा कर्मबंध बढ़ा रहे है।

ध्यान का चौथा पाया संस्थान विचय धर्म ध्यान है। जैन आगमों की ध्यान के संबंध में यह मौलिक देन है। आज ध्यान की बड़ी चर्चा है। नए-2 नाम आ रहे हैं, नए-2 Brand चालू हो गए हैं लेकिन अपना आगमिक स्वरूप हमारे हाथ से छूट गया है। हम कभी पतंजलि की नकल करते हैं कभी विपश्यना की, तो कभी महेश योगी की, तो कभी धीरेन्द्र ब्रह्मचारी की। लेकिन अपनी परंपरा को भुला बैठे हैं। संस्थान विचय धर्म ध्यान से हम संपूर्ण लोक का अलग-2 तलों पर, अलग-2 विधि से अपने मन पर चित्र बना लेते हैं। वह चित्र इतना सच्चा हो जाता है कि उस-2 स्थान पर रहने वाले जीवों का हमें साक्षात्कार होने लगता है। ध्यान से हम लोकमय हो जाते हैं और लोक हमारे शरीर में समा जाता है। लोक और शरीर एकमेक हो जाने का नाम ही संस्थान विचय धर्म ध्यान है। लोक और शरीर में अंतर भी नहीं है। एक स्थूल Level है दूसरा सूक्ष्म। स्थूल को लोक कहा जाता है, सूक्ष्म को शरीर। इस ध्यान के जरिए पहले लोक से शरीर तक मन को केन्द्रित किया जाता है और ऐसा करके हम अपनी लोक व्यापी वासना को भी सूक्ष्मतर बना कर शरीर के कुछ विशेष केंद्रों या चक्रों तक समेट देते हैं अर्थात् शरीर वासना अधिक सिमट जाती है। उसे समेट कर हम अपने संकल्प बल से उसे नष्ट कर देते हैं। पुराने जमाने के गारुडी मानव शरीर में व्याप्त सर्प के विष को किसी एक स्थान पर खींच लेते थे और बाद में वहां से उसको निकालकर शरीर को विष रहित बना देते थे। इस ध्यान का अभ्यास स्वयं भवागन महावीर ने भी किया था तथा बाद के आचार्य भी किया करते थे।

आचारांग सूत्र के नौवें अध्ययन में वर्णन है– **'अदु पोरिसियं तिरियं भित्तिं चक्खुसा सज्ज अन्तसो झाति'** भगवान् महावीर अपने नेत्रों के सामने किसी भी पुरुष प्रमाण दीवार पर नजरें टिका देते थे और अंदर ध्यान में चले जाते थे। आचार्य भद्रबाहु स्वामी महाप्राण ध्यान साधना का अभ्यास करने के लिए नेपाल के पहाड़ों में चले गए थे। उनके चार शिष्य थे जो जिनकल्प की साधना कर रहे थे। वे एक बार भयंकर सर्दी के मौसम में भिक्षाचर्या के लिए राजगृह नगरी में पधारे। जब वापस आ रहे थे तब एक मुनि गुफा के द्वार पर पहुंचा तभी चौथा प्रहर प्रारंभ हो गया। दूसरा मुनि गुफा से कुछ दूर रह गया। तीसरा मुनि नगर के बाहर उद्यान तक पहुंच पाया तथा चौथा केवल नगर के द्वार को ही लांघ सका था कि चौथा प्रहर प्रारंभ हो गया। और जिनकल्पी मुनियों के नियमानुसार वे अपने-2 स्थान पर ध्यानस्थ खड़े हो गए। सर्दी की अधिकता इतनी थी कि एक मुनि पहले प्रहर में ही दिवंगत हो गया। दूसरा मुनि दूसरे प्रहर में, तीसरा मुनि तीसरे प्रहर में तथा चौथा मुनि रात के चौथे प्रहर में दिवंगत हो गया। वे चारों आराधक मुनि थे। उनकी शरीर साधना तो उत्कृष्ट थी ही मानसिक साधना, ध्यान की एकाग्रता उससे भी गहरी और ऊंची थी।

बहुत सारे मानवों की समस्या है कि वे अपनी आदतों को सुधारने के लिए भरसक प्रयास करते हैं किंतु कामयाब नहीं हो पाते, पूरी ताकत से संकल्प लेते है कि क्रोध नहीं करेंगे, नशा नहीं लेंगे, किसी से ईर्ष्या द्वेष नहीं करेंगे आदि-2, किंतु कुछ दिनों की चुस्ती के बाद फिर पुरानी आदतों का हमला हो जाता है और नए संकल्प धराशायी हो जाते हैं। उन दुर्बल मानसिकता वाले मानवों के लिए ध्यान अच्छा रास्ता है। ध्यान हमारे हृदय को गहराई से बदलने की क्षमता रखता है, वह हमें आत्मा के अनुभव स्तर तक ले जाता है। एक बार आत्मा के आनन्द का अनुभव हो जाए फिर मन और इन्द्रियों के पुराने अभ्यास अपना जोर नहीं दिखा सकते। इसीलिए भगवान् महावीर के संबंध में कहा है **'अकसाई विगयगेही सद्द रुवेसुऽमुच्छिओ झाई।'** भगवान् महावीर ने

ध्यान के बल पर तीन बड़ी उपलब्धियां बटोरी थी। (1) उनकी कषायें समाप्त प्राय हो गई। (2) उनका आसक्ति का भाव नष्ट हो गया। (3) शब्द और रूप की मूर्च्छा दूर हो गई। ध्यान का दूसरा बड़ा लाभ ये होता है कि साधक को शरीर और आत्मा की भिन्नता का Practical बोध हो जाता है। जैसे सूखे नारियल के खोल पर चोट मारने से अंदर की गिरी नहीं टूटती जबकि कच्चे नारियल के खोल पर चोट मारने से अंदर की गिरी भी टूट जाती है, ऐसे ही ध्यानस्थ व्यक्ति के शरीर पर चोट पड़े तो उसकी अंतरात्मा पीड़ित और व्यथित नहीं होती जबकि सामान्य व्यक्ति के शरीर की चोट से वह भीतर से व्याकुल हो जाता है।

भगवान् महावीर के कानों में कीले गड़े तो भी उन्हें पीड़ा का अनुभव नहीं हुआ क्योंकि उनकी सारी ऊर्जा शरीर से हटकर आत्मा के स्तर पर प्रवाहित हो रही थी। जब उनके कानों से वे कील खरक वैद्य ने बाहर निकाले, तब उन्हें भयंकर पीड़ा का अनुभव हुआ और उनके मुंह से चीख निकली। क्योंकि खरक वैद्य ने ईलाज करने में कुछ जल्दी की। भगवान् अभी भिक्षा चर्या से लौटे ही थे। ध्यान की मुद्रा बनाई थी। अभी ध्यान के गहन स्तर पर नहीं पहुंचे थे कि खरक ने उनके कानों से कील निकाल दी। इसी कारण भगवान् के शरीर को भीषण वेदना का अनुभव हुआ और वे चीख उठे।

इस तरह शरीर और आत्मा की भिन्नता के उदाहरण बहुत योगियों के मिलते रहे हैं।

सन् 1910 की बात है। काशी के नरेश के अपैण्डिक्स का आप्रेशन होना था। यूरोप के 5 डॉक्टर बुलाए गए थे। राजा ने अपनी शर्त रखी कि मैं बेहोशी का इंजेक्शन नहीं लूंगा क्योंकि मैं हर तरह के मादक द्रव्यों को छोड़ चुका हूं। डॉक्टरों को ये शर्त बड़ी अजीब लगी। क्योंकि अपैण्डिक्स का आप्रेशन बड़ा आप्रेशन था। और जब शरीर में Cut लगेगा, तब दर्द होगा, वह बर्दाश्त नहीं होगा। हाथ पैर हिलने से आप्रेशन बिगड़ जाएगा। उन्होंने अपनी आशंका राजा के सामने रखी तो

राजा साहब ने कहा—आप आप्रेशन करें, मैं हर पीड़ा सह लूंगा। केवल मुझे गीता-पाठ की आज्ञा चाहिए। डॉक्टर्स ने अपने को विश्वस्त करने वास्ते एक प्रयोग करने की सोची। काशी नरेश से कहा, आप गीता पाठ करो। उसने प्रारंभ कर दिया। दूसरे अध्याय तक पहुंचते-2 उसका होश बाहर से अंदर की ओर चला गया। वह जैसे ही उस श्लोक पर पहुंचा— **'नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि, नैनं दहति पावकः, नैनं क्लेदयन्त्यापो नैनं शोषयति मारुतः'** अर्थात् इस आत्मा को शस्त्र काट नहीं सकते, अग्नि जला नहीं सकती, पानी सड़ा नहीं सकता तथा हवा सुखा नहीं सकती' उसे शरीर का भान छूट गया। डॉक्टरों ने उस समय उसकी अंगुलि में सुई चुभो कर देखी। उसने कोई प्रतिक्रिया नहीं की। अब डॉक्टरों को विश्वास हो गया कि राजा का शरीर एक तरह से निश्चेष्ट हो गया है और उन्होंने आराम से उसके अपैण्डिक्स का आप्रेशन कर दिया। Medical Science के मौजूदा इतिहास में ये पहला आप्रेशन हुआ था, जो बिना एनैस्थिसिया के किया गया था। ब्रिटेन के समाचार पत्रों ने तो इसे Miracle of Gita कहकर सुर्खियों में छापा था।

बाद में डॉक्टरों ने राजा से पूछा कि आपने उस समय क्या किया था, तो वह बताने लगा—मैंने अपना होश संभाले रखा था। I Kept my Awareness होश संभालने को ही हमारे आगमकार अप्रमाद कहते हैं। अप्रमाद की स्थिति ही ध्यान की स्थिति है। ध्यान खड़े-2 भी हो सकता है, बैठे-2 भी तथा लेटे-2 भी हो सकता है और तो और चलते-2 भी ध्यान संभव है। शरीर और आत्मा की अलग-2 सत्ता है, अलग-2 क्रिया है, ऐसी जागृति जब भी हो जाए, वही ध्यान है।

आवश्यकता है, हम भी इस ध्यान में प्रवेश करें तथा अपने धार्मिक और संयमी जीवन का लाभ लें। जो भी आत्मा ध्यान के मार्ग का अवलंबन लेगी, उनका यहां भी कल्याण होगा तथा आगे भी कल्याण होगा।

8. बनो धीर वीर गंभीर

साहू गोयम पण्णा ते छिन्नो मे संसओ इमो।
नमो ते संसयातीत सव्व सुत्त महोदही ॥

पूज्य गुरुदेवों की कृपा से जो कुछ सीखा है कुछ देर आपके समक्ष रखेंगे। भव्य जीव धर्म आराधन करें, रत्नत्रय को उज्ज्वल करें, यही हमारी कोटिशः मंगलकामनाएं हैं।

तीर्थंकर भगवंतों की वाणी–

'समुद्द गंभीर समा दुरासया अचक्किया केणइ दुप्पधंसया,
सुयस्स पुण्णा विउलस्स ताइणो खवितु कम्मं गइमुत्तमं गया।'

वे आत्मा उत्तम गति मोक्ष में जाती हैं जो समुद्र के समान गंभीर होती हैं, जिनकी गहराई को नापना संभव नहीं होता तथा कठिन से कठिन परिस्थितियां जिन्हें दबा और डरा नहीं सकती, जो विपुल श्रुत ज्ञान से भरपूर होते हैं तथा छः काया के रक्षक होते हैं।

जिन आत्माओं को आत्म-कल्याण की गहरी तमन्ना और लगन होती है उनके लक्षण अलग ही होते हैं। उनके सोचने, बोलने और काम करने का ढंग सबसे निराला होता है। वे छोटी-2 बातों से ऊपर उठ जाते हैं। वे बात-2 पर छलकते नहीं है। जैसे भरा हुआ घड़ा छलकता नहीं है, बल्कि आधा भरा घड़ा ही छलकता है, ऐसे ही जिनके पास विशाल ज्ञान की, चारित्र की दौलत होती है वो सदा शांत रहते हैं, बड़बड़ाते नहीं हैं। वे सबका सम्मान करते हैं, उनका कोई सम्मान न करे या अपमान कर दे तो भी आपे से बाहर नहीं होते। भले ही साधारण आदमी उनकी कीमत को न जाने मगर वे अपने मुंह से अपनी बड़ाई नहीं करते।'

''यद्यपि स्वच्छ भावेन दर्शयत्युदधिर्मणीन्
तथापि जानुदघ्नोऽयमिति चेतसि मा कृथाः।''

कभी-2 ऐसा होता है कि समुद्र अत्यंत स्वच्छ होता है और उसमें पड़े हुए मणि-माणिक मोती साफ-2 नजर आने लगते हैं, उस समय कवि कहता है कि ध्यान रखना कि सागर की स्वच्छता के कारण अपने मन में ये मत सोच लेना कि सागर का पानी घुटने जितना है, वह बहुत गहरा, बहुत गहरा है। आज मानव जाति की विडम्बना ये हो चुकी है कि हमारे अपने पास गंभीर दृष्टि नहीं है तथा जिनके पास वह दृष्टि है हम उनकी गंभीरता की खिल्ली उड़ाते हैं। अपनी समझ की कमी को समझने की बजाय औरों को नासमझ समझते हैं।

एक बार मानव सेवा संघ के प्रवर्तक प्रज्ञाचक्षु स्वामी शरणानन्द जी म. अपने कुछ मित्रों के साथ वृंदावन में श्री बांके बिहारी जी के मंदिर में गए। दर्शनार्थियों की भीड़ थी, उन्हें कुछ दिख नहीं रहा था। फिर भी श्रद्धावश आगे बढ़े जा रहे थे। एक मनचले युवक ने उन पर व्यंग्य कसा 'आप नेत्रहीन हो, आपको कुछ दिखता तो है नहीं। फिर भला आपने यहां आने की तकलीफ क्यों की।' वह युवक श्री शरणानन्द जी के अंधेपन का मजाक कर रहा था। लेकिन स्वामी जी इतने चंचल और क्षुद्र नहीं थे कि मामूली से कटाक्ष से विचलित हो जाते। वे उस युवक की ओर मुड़े, उस युवक के कंधें पर हाथ रखा और मुस्कराते हुए बोले 'अरे भाई, कम से कम, उन्हें (भगवान् को) तो दिखता ही है कि एक अंधा भिखारी उनके दरवाजे पर खड़ा है।' स्वामी जी की गंभीरता देख युवक पानी-2 हो गया और अपनी अशिष्टता के लिए माफी मांगने लगा। पांच कारणों से या यों कहिए पांच अवसरों पर हमें गंभीरता का परिचय देना चाहिए–

1. अपने कल्याण के लिए गंभीर बनो
2. अपने उत्कर्ष को हजम करने के लिए गंभीर बनो
3. दूसरों के दोषों को हजम करने के लिए गंभीर बनो

4. निर्दोष होते हुए भी यदि दोषारोपण होता हो तो गंभीर बनो
5. दूसरों को सुधारने के लिए गंभीर बनो।

जिस इंसान में गंभीरता का गुण आ जाता है उसकी सोच बदल जाती है, दृष्टिकोण बदल जाता है, उसके शब्द और भाषा-शैली बदल जाती है, उसका व्यवहार एवं आचार-विचार भी बदल जाता है। जैसे Tubewell की Boring जितनी गहरी होती है, उतना ही पानी स्वच्छ और शीतल निकलता है, ऐसे ही गंभीर चिंतन वाले लोगों की भाषा भी बहुत उम्दा और शालीन होती है। एक बार का प्रसंग है कि आचार्य रघुवीर जी भारतीय संस्कृति के चिह्नों की खोज के लिए चीन-मंगोलिया आदि देशों की यात्रा पर गए। कई संस्थाओं ने उन्हें अपने यहां व्याख्यान करने के लिए निमंत्रित किया हुआ था। जब वे एक सभा में पहुंचे तो सभा के मंत्री ने श्रोताओं को उनका परिचय दिया और कहा कि ये श्री रघुवीर जी हैं और इण्डिया से आए हैं। डॉ. रघुवीर को ये परिचय जंचा नहीं। मंत्री को बीच में ही रोकते हुए उन्होंने कहा, 'मैं जम्बूद्वीप से आया हूं।' इतना कहने की देर थी कि श्रोताओं में एक श्रद्धा की लहर दौड़ पड़ी तथा उनके चरणों को छूने की होड़ लग गई। इसका कारण डॉ. साहब को पता था, क्योंकि वहां की जनता के हृदय में 'इण्डिया' शब्द से कोई लगाव नहीं था अपितु प्राचीन नाम जम्बूद्वीप से था। जम्बूद्वीप के संबंध में उन्होंने प्राचीन साहित्य से बहुत कुछ सीखा था। जबकि 'इण्डिया' तो विदेशी लोगों द्वारा दिया गया छिछला नाम लगता था।

गंभीरता शब्दों में भी होती है, तो भावों में भी होती है। विधि में होती है तो उपायों में भी होती है। प्रश्नों में होती है तो समाधानों में भी होती है। तालाब में विस्तार हो सकता है तो कुएं में गंभीरता होती है। ज्ञान में विस्तार होता है तो ध्यान में गहराई होती है। ज्ञान वस्तुओं की ओर यात्रा है तो ध्यान यात्रा के पश्चात् आत्मा में प्रवेश का नाम है। एक साधक ने चीन के प्रसिद्ध धर्मगुरु कन्फ्यूशियस (Confucius) से

पूछा 'आप बताएं, मैं मन पर संयम कैसे कर सकता हूं?' कन्फ्यूशियस ने कहा 'मैं इसका छोटा सा उपाय बताता हूं।' पहले मेरे एक प्रश्न का उत्तर दो—क्या तुम कानों से सुनते हो? साधक कहता है—हां। कन्फ्यूशियस बोला 'मैं मान नहीं सकता कि तुम कानों से सुनते हो, मैं समझता हूं कि तुम मन से सुनते हो। आज से तुम केवल कानों से सुनना प्रारंभ करो और ये बात मैं केवल कानों के अलावा आंख, जीभ आदि शेष इन्द्रियों के बारे में भी मानता हूं कि तुम आंखों से नहीं देखते, मन से देखते हो, जीभ से नहीं चखते, मन से चखते हो। आज से तुम आंखों से देखना शुरू करो, जीभ से चखना शुरू करो, मन को बीच में मत आने दो और देखना, मन पर अपने आप संयम हो जाएगा।'

संयम कोई बच्चों का खेल नहीं है, संयम चित्तवृत्तियों का नियंत्रण है। नियंत्रण के लिए आवश्यक है कि मन को इंद्रियों के काम में उछलने-कूदने न दें, दखल न देने दें। इन्द्रियों का विषय इन्द्रियों के अधीन रहे, मन के दायरे में न आए। जैसे ही मन बीच में आ जाता है, एक तूफान खड़ा हो जाता है। इन्द्रियों की पटुता क्षीण हो जाती है और मन की चंचलता प्रारंभ हो जाती है। इससे बचना ही साधकों का परम-चरम लक्ष्य है। किस तरह जागरूक व्यक्ति अपने मन को साधकर अपनी सुरक्षा कर लेता है। इसका एक उदाहरण सुभाष चंद्र बोस के जीवन प्रसंगों में मिलता है। वे इंग्लैण्ड में I.C.S. की पढ़ाई कर रहे थे। उस दौरान एक दिन वे वहां की ट्रेन में सफर कर रहे थे। डिब्बा खाली था। पढ़ने लगे। अगले स्टेशन पर एक युवती उसी डिब्बे में चढ़ गई। गाड़ी रवाना हो गई। उस युवती ने अकेले सुभाष को देखा तो चंचल हो उठी। आंखों की शरारत मन में, मन की शरारत आंखों में और दोनों की शरारत जुबां पर आ गई।

आंखें ये कह रही हैं कि दिल ने मिटा दिया,
दिल ये कह रहा है कि आंखों ने मिटा दिया।

बिगड़ा किसी का कुछ नहीं इस जोशे-इश्क में,
दोनों की जिद्द ने खाक में हमको मिला दिया ॥

लिहाजा, उस लड़की ने अपने मन की बात सुभाष बोस से कह दी कि या तो मेरी इच्छा पूरी करो वर्ना मैं चेन खींचकर ट्रेन रुकवा दूंगी और आपको गिरफ्तार करवा दूंगी। युवा सुभाष न घबराए, न लड़खड़ाए। इन्द्रिय और मन को संयमित किया और अपने कानों की ओर हाथ रखते हुए कहने लगा I don't hear, so please give me in writing अर्थात् मुझे सुनाई नहीं देता इसलिए आप जो कहना चाहती हैं लिखकर दे दें। वह युवती तो मचल गई। सारी गंभीरता खो दी और एक Slip पर अपनी गंदी भावना लिखकर दे दी तथा साथ ही धमकी भी। सुभाष चंद्र बोस अब अपने मूल रूप में आ गए और बोले My Sister, Now I am not afraid of your threat. Now you are free as you want to do, so do it, because I have it in writing now. मैं तुम्हारी धमकियों से डरता नहीं हूं क्योंकि मेरे पास तुम्हारे हाथ का लिखा पर्चा है इसलिए मैं सुरक्षित हूं। तुझे जो करना है करो। बेचारी को अपनी शक्ल बचानी मुश्किल हो गई। जिन लोगों ने जिंदगी में बड़े-2 मुकाम छूए हैं उन्होंने शुरू के दौर में ही गंभीरता से काम लेना सीख लिया होता है। वे परिस्थितियों से घबराते नहीं हैं, हर घटना को एक चुनौती मानकर उसका सामना करते हैं। उनका धैर्य डोलता नहीं है। मेरु की तरह निष्कंप रहकर कष्टों को पार कर जाते हैं। अपने बलबूते पर फैसले लेते हैं, संसार आलोचना करे या प्रशंसा, उन्हें उसकी परवाह नहीं। अपनी सोच को आगे रखकर आगे बढ़ते हैं।

'निन्दन्तु नीति निपुणाः यदि वा स्तुवन्तु
लक्ष्मीरागच्छतु गच्छतु वा यथेष्टम्,
अद्यैव मरणमस्तु युगान्तरे वा
न्याय्यात् पथः पदं न प्रविचलन्ति धीराः।'

निन्दा हो या स्तुति, अमीरी हो या गरीबी, जीवन मिले या मृत्यु, धीर गंभीर पुरुष अपने मार्ग से एक कदम भी दाएं-बाएं नहीं होते। इस देश को एक अनूठा प्रधानमंत्री मिला था— लालबहादुर शास्त्री, 18 साल के नेहरू के शासन को 18 महीने के शास्त्री के शासन ने भुला दिया था। वह गरीबी से ऊपर उठा था। शुद्ध शाकाहारी था। उसके बचपन का किस्सा है कि एक बार वह बालक गंगा पार मेला देखने गया। कई साथी थे। मेला देखकर लौटते समय ध्यान आया कि जेब में तो एक पैसा भी नहीं है। किश्ती में गंगा पार करने के लिए मित्रों की मदद लेनी पड़ेगी। लेकिन हाथ पसारना उसके स्वाभिमान को गंवारा नहीं हुआ। किनारे पर खड़े-2 उसने साथियों से कहा कि आप चले जाएं, मैं अभी मेला कुछ देर और देखूंगा। साथी किश्ती से दूसरे किनारे पहुंचे तब उसने अपने कपड़े उतारे और उफनती गंगा में छलांग लगाने को तैयार हो गया। दूसरे किनारे पर खड़े साथियों ने बहुत रोका, पर वह नहीं माना। अदम्य साहस और उत्साह के बल पर आधा मील लंबी उफनती हुई गंगा नदी पार कर ही दी और अपने गौरव की रक्षा की। बचपन की यह धीरता, गंभीरता कदम-2 पर उनका साथ देती रही और अंततः उन्हें देश के सर्वोच्च पद तक ले गई। ये हमारे देश का दुर्भाग्य ही था कि ऐसा श्रेष्ठ प्रधानमंत्री डेढ़ साल में ताशकन्द (रशिया) में काल कवलित हो गया।

जब व्यक्ति गंभीर होकर विचारता है तब वह हर घटना से, हर वस्तु से अलौकिक अर्थ निकाल लेता है। उसकी ग्रहण क्षमता सामान्य से कई गुणा ज्यादा हो जाती है। जैसे आप देख सकते हैं कि पेड़ों पर से रोज ही फल नीचे गिरते हैं लेकिन गिरते फल को देख गहराई में जाने वाले कितने होते हैं।

कुछ न्यूटन जैसे मानव ही उस घटना से गुरुत्वाकर्षण का सिद्धांत निकालते हैं।

'जिन खोजा तिन पाइया गहरे पानी पैठ।
मैं बपूरा बूडन डरा रहा किनारे बैठ ॥'

आगमों में अनेक रहस्य छिपे हुए हैं। उन्हें वही उजागर कर सकता है जिसका अवगाहन गहरा हो, तलस्पर्शी चिन्तन हो। शास्त्रों में प्रतिपादित किया है कि निगोद वनस्पति में अनन्त जीव होते हैं। सूईं की नोक जितनी अवगाहना में अनन्त जीवों का होना, सामान्य बुद्धि के मानवों के लिए सहज ही समझ नहीं आएगा। वह तो केवल मजाक ही उड़ा सकता है। जैसा कि कितने ही सतही विद्वानों ने उड़ाया है, मगर जिन्होंने गहराई में डुबकी लगाई और खोज की है उन्होंने पाया कि विज्ञान विशेष तौर पर मेडिकल साईंस इन सब सिद्धांतों की पुष्टि करती है। मेडिकल साईंस मानती है कि पिन की नोक जितने हमारे शरीर में दस लाख जीवन्त कोशिकाएं है तथा सारे शरीर में 600 अरब कोशिकाएं है। दस लाख कोशिकाओं की मान्यता यदि विज्ञान में स्वीकृत है तो आगम तो सर्वज्ञ सर्वदर्शियों की वाणी है, वह तो अधिक प्रामाणिक है।

मैं बता रहा था कि गंभीर चिन्तन करने वालों को अमूल्य ज्ञान मिल जाता है। नई दृष्टि मिल जाती है। रबीन्द्रनाथ टैगोर के जीवन की एक घटना है कि वे एक दिन नदी के किनारे टहल रहे थे। दूर से देखा कि नदी के तेज प्रवाह में एक भयभीत पंछी अपनी पूरी ताकत के साथ अगले किनारे पहुंचने की कोशिश कर रहा है। कुछ निकट हुए तो पहचान में आया कि वह एक पालतू मुर्गी थी। वह अपने मालिक के हाथों से उछल कर पानी में कूद गई थी और फिर अपनी जान बचाने वास्ते पानी के प्रवाह के खिलाफ जूझ रही थी। लेकिन वह किनारे पहुंचती उससे पहले ही मालिक ने किश्ती उसके पास खींच ली और उसे पकड़ लिया। उसकी गर्दन को दबोच उस निर्दयी ने उसे रस्सी में बांध दिया। रबीन्द्र बाबू उसे एकटक देखते रह गए। उनके मन की गहराई में कोई भीषण सिहरन दौड़ गई। देर तक मंथन चलता रहा।

घर पहुंचे तो बावर्ची को बुलाकर कहा– "आज से भोजन में मैं किसी तरह का मांस नहीं लूंगा।" बावर्ची उन्हें आश्चर्य से देखता रहा। फिर उन्होंने उस मुर्गी की मर्मस्पर्शी घटना सुनाई और अपना संकल्प भी दोहराया। उस स्वल्प से त्याग से उन्हें जो आंतरिक अनुभूति हुई उसका उल्लेख उन्होंने संक्षेप में, दो शब्दों में ही किया है–**कल्पनातीत शांति**।

वस्तुतः संसार में जितने भी त्यागी-वैरागी-तपस्वी-महापुरुष हुए, उनके त्याग वैराग्य की मूल उत्पत्ति गंभीर चिन्तन, गंभीर मनन तथा गंभीर विश्लेषण से हुई थी। जिन शासन में दीक्षित होने वाले सैकड़ों हजारों साधु-साध्वियों की कठोर तपस्या उनके गंभीर अनुभवों का प्रतिफल रही है। एक संत हुए हैं खद्दरधारी श्री गणेशमल जी महाराज। मारवाड़ के विलाड़ा कस्बे के रहने वाले थे। संवत् 1936 (सन् 1879) में जन्म हुआ था। वहां साधु सतियों का निरंतर आवागमन होता रहता था। अतः वैराग्य भावना को बल मिलता गया। लेकिन दीक्षा का उदय बहुत बड़ी उम्र में हुआ। संवत् 1970 (सन् 1913) में 34 साल की उम्र में तपस्वी श्री प्रेमराज जी म. के पावन सानिध्य में दीक्षित हुए। गुरु की तरह ही तपस्या की रुचि बन गई। प्रायः विगय का त्याग ही रखते थे। कठिन से कठिन परिस्थिति में भी विचलित नहीं होते थे। सवंत् 1983 (सन् 1926) में उनका हिंगन घाट में चौमासा था। अचानक शहर में प्लेग फैल गया। चारों ओर अफरा-तफरी मच गई। लोग शहर को छोड़ भागने लगे। उनसे भी विनति की कि गुरुदेव यहां मृत्यु का भीषण ताण्डव मच रहा है, आप किसी सुरक्षित स्थान पर पधार जाओ, मगर वे तो अचल, अटल धैर्य के धनी थे। वहीं रहे और समय पाकर प्लेग भी शांत हो गया। उनका मानना था कि घबराहट और अधैर्य से बनता क्या है? प्लेग शांत होने के बाद सरकारी प्रचार के कारण, कुछ अफवाह बाज लोगों के कारण लोगों में ये धारणा बन गई कि प्लेग चूहों के कारण फैलता है और लोगों ने चूहों को मारना शुरू कर दिया। श्री गणेशमल जी म. (गणेशीलाल नाम भी प्रचलित है) ने लोगों को समझाया कि चूहा भी हमारी सृष्टि का एक आवश्यक प्राणी है। यह

खेती खाता है ऐसा नहीं है बल्कि खेती उगाने में, जमीन को समृद्ध करने में मदद करता है। ये रोग की उत्पत्ति का कारण नहीं है, बल्कि कितने ही रोग इसके कारण उभरते नहीं है। गंभीरता से विचार करो, पंचेन्द्रिय प्राणी को मारने का कितना दुष्फल मिलता है। नरकायु का बंध भी हो सकता है। गणेश जी की सवारी है चूहा। यदि आप उनकी सवारी को मारोगे तो गणेश जी का वरदान कैसे पाओगे? देशनोक (बीकानेर) में चूहों का मंदिर मशहूर है। वहां चूहों का दर्शन ही पवित्र माना जाता है। राजा कुमार पाल ने 'मूषक-विहार' नामक विशाल मंदिर उस चूहे की स्मृति में, प्रायश्चित स्वरूप बनवाया था जिसकी मृत्यु राजा के कारण हुई थी। इस तरह श्री गणेशमल जी म. ने अपनी गंभीर वाणी से पथ भटकी प्रजा को पाप से बचाया। इनका प्रभाव केवल जैन श्रावक श्राविकाओं तक सीमित नहीं था बल्कि गांवों के किसान लोग भी उनकी भक्तिपूर्वक आराधना किया करते थे। जब कि उनकी शर्तें भी बड़ी कठोर होती थी। उनकी पहली शर्त होती थी कि मेरे पास आने वाला मुंह पट्टी लगाएगा तो ही मैं उससे बोलूंगा। दूसरी शर्त थी कि स्थानक में प्रवेश उसी को मिलेगा जो खद्दर के कपड़े पहनेगा।' खद्दरधारी उनका विशेषण बन गया था। एक बार वे मराठवाड़ा के गांव गंगाखेड़ में पधारे। जैन घर तो कम ही थे। परंतु एक किसान था शिवराम पटेल। उसकी भक्ति देख उन्होंने अपना चातुर्मास कर दिया। उस चातुर्मास में धर्म की विशेष प्रभावना हुई। उस किसान भाई ने भी कमाल कर दिया। उसने कुछ नियम लिए–

1. जीवनपर्यन्त सचित्त जल नहीं पीऊंगा।
2. शुद्ध खादी के कपड़े पहनूंगा।
3. मां या पत्नी के हाथ का बनाया भोजन ही करूंगा।
4. आजीवन ब्रह्मचर्य का पालन करूंगा।
5. प्रतिदिन मौन सामायिक करूंगा तथा नमोकार मंत्र का जाप करूंगा।
6. चार महीने तक गांव से बाहर नदी में मछली नहीं मारने दूंगा।

सारे गांव में इस अंतिम नियम की मुनादी कर दी गई। वैसे तो सारे गांव ने बड़ी निष्ठा से इस नियम को निभाया लेकिन एक आदमी अंधेरे में मछली पकड़ने चला गया। उसके जाल में कोई भारी जीव आ गया। वह मछुआरा उसे खींचते-2 खुद ही नदी में गिर गया और जान से हाथ धो बैठा।

मन को गंभीर बनाओगे तो सब कुछ पाओगे।
बन करके पात्र दिखाओगे तो सब कुछ पाओगे ॥
जल से भरी सभी सरिताएं मिलती हैं सागर में।
मूल्यवान् सब रत्न स्वयं हैं आते रत्नाकर में ॥
तुम भी सागर बन जाओगे तो सब कुछ पाओगे ॥

संसार और मोक्ष दो किस्म का वैभव उन्हीं को नसीब होता है जो गंभीरता के गुण को धारण करते हैं। शिक्षाशील के 15-16 गुण उत्तराध्ययन सूत्र के ग्यारहवें अध्ययन में फरमाए हैं। उनमें पहले दो गुणों में गंभीरता का ही खुलासा है।

'नीयावत्ती अचवले' नम्रता का भाव तथा चंचलता का अभाव ये दो विशेषताएं गंभीर आदमी में पाई जाती है। जीवन की ऊंचाई उसी को मिलती है जिसमें विनम्रता होती है तथा चंचलता नहीं होती है। दूसरी बात, ऊंचाई मिलने के बाद ऊंचाई बरकरार भी उसी की रहती है जो विनम्र रहता है तथा चंचलता से बचा रहता है। नहीं तो, कुछ लोग, मामूली सी समृद्धि, प्रसिद्धि या विभूति पाकर अहंकारी बन जाते हैं या फिर चंचल हो उठते हैं। उनका गंभीरता का गुण लुप्त हो जाता है ऐसे मानवों का पतन भी शीघ्र हो जाता है। परंतु जो सब कुछ बनकर भी गंभीर बने रहते हैं उन्हें ही जीवन की श्रेष्ठताएं उपलब्ध होती है। गंभीरता गुण का जीवन में वही स्थान है जो स्थान शरीर में प्राणतत्त्व का है। प्राण सबका संचालक है, शेष सब संचालित हैं। ऐसे ही गंभीरता आध्यात्मिक माला में सुमेरु तुल्य है।

एक बार प्राण, वाणी और इन्द्रियों में बहस छिड़ गई। कौन श्रेष्ठ है तथा कौन ज्येष्ठ है। इन्द्रियों का दावा था कि हम श्रेष्ठ हैं, वाणी का दावा था कि मैं श्रेष्ठ हूं और प्राण न कहते हुए भी अपने श्रेष्ठता को साबित कर रहे थे। विवाद का समाधान निकालने के लिए उन्होंने सोचा क्यों नहीं किसी सर्वमान्य निर्णायक के पास चले जाएं। ब्रह्मा जी निगाह में आए। उनके चरणों में पहुंचकर उन्होंने अपनी-2 श्रेष्ठता का दावा ठोक दिया। प्रजापति ब्रह्मा ने अपनी ओर से किसी का पक्ष नहीं लिया। केवल एक तर्क सबके सामने रख दिया कि तुम में से जिसके निकल जाने के बाद शरीर शव हो जाए, कार्य करने में असमर्थ हो जाए, वह श्रेष्ठ कहला सकता है। शरीर को छोड़ बाहर निकलने का पहला मौका वाणी को दिया गया। वह एक साल तक बाहर रही और ये विश्वास लेकर आई थी कि शरीर तो मर चुका होगा। मगर जब वापस लौटी तो शरीर स्वस्थ्य भी था, सक्रिय भी था। कुछ दिन कुछ काम करने में उसे दिक्कत आई थी लेकिन शीघ्र ही शरीर ठीक हो गया था। कभी-2 तो वाणी के अभाव में ज्यादा सुखी भी हो गया लगता था क्योंकि वाणी सहायता करती थी तो झमेला भी बहुत करती थी **'रहिमन जिह्वा बावरी कह गई आकाश पाताल, आपहू तों भीतर गई जूती खात कपाल।'** अगले साल दृष्टि ने बनवास लिया। उस साल शरीर को ज्यादा तकलीफ हुई मगर जिंदगी फिर भी शान से चली। साल भर बाद दृष्टि आई तो देखा, शरीर पूर्ववत् Active है। एक साल के लिए कान भी विदा ले गए, शरीर में बहरापन छा गया। मगर जिंदगी का दरिया यों ही बहता रहा। न कोई बाधा, न कोई बंधन। अगले वर्ष तो मन को भी छुट्टी लेने का मन कर गया। हां उसे लगता था, मेरे बिना सब कुछ तहस-नहस हो जाएगा। जब वर्ष भर के बाद मन लौटा तो पूछा, मेरे बगैर कैसे गुजारा चला। शरीर ने जवाब दिया—छोटा बच्चा, गर्भस्थ शिशु मन का प्रयोग ही नहीं करता, सांस लेता है, खुराक लेता है और जीवित रहता है। ऐसे ही परम शांति सुख के साथ मेरा एक साल गुजारा हुआ है। तू तो खुद भी परेशान रहता है, मुझे भी परेशान रखता है। मुझे तेरे

बिना कोई परेशानी नहीं हुई। अब प्राण ने जाने की घोषणा कर दी। तुरंत वाणी, काल, आंख आदि इन्द्रियों का जोर उखड़ने लगा। मानो किसी मजबूत घोड़े ने खूंटा उखाड़ दिया हो। इन्द्रियां घबराकर कहने लगी 'आप न जाएं।' वाणी भी गिड़गिड़ाई 'मैं अपने को श्रेष्ठ कहती थी, वह गलत था, आप ही श्रेष्ठ हैं। कान बोले, हम तो कुछ नहीं है, हमारे आधार तो आप ही हो। मन भी गुनगुनाया—मैं स्वयं को सर्वाश्रय[1] मानता था, मगर सर्वाश्रय तो आप ही हैं। **'प्राण इत्येवाचक्षते। प्राणे ह्येवैतानि सर्वाणि भवन्ति'** अर्थात् वाणी, चक्षु, मन इन सबको भी प्राण ही कहा जाता है क्योंकि प्राण ही सब कुछ होता है।

जैसे जीवन शक्तियों का केन्द्र प्राण है वैसे ही आत्म शक्तियों का केंद्र गंभीरता है। इस गुण के सहारे ही सारे गुण पनपते रहते हैं।

गंभीर आदमी की एक पहचान तो ये होती है कि उनका मनोबल ठोस होता है, वे बदलती हुई हवाओं से विचलित नहीं होते, टिक कर निर्णय लेते हैं। उनमें धैर्य की अतुल मात्रा होती है। कुछ जीवन प्रसंग आपको सुनाऊंगा कि हमारे जिन शासन में कैसे-2 महापुरुष हुए हैं। ऋषि सम्प्रदाय में एक महामुनि थे देव ऋषि जी महाराज। वे मालवा के प्रतापगढ़ के रहने वाले थे। घर में नाम था दुवाचन्द। एक पुत्र और पुत्री को जन्म देकर उनकी पत्नी का देहांत हो गया। जैसे हमारे तपस्वी बद्री प्रसाद जी म. को वैराग्य भावना जागृत हुई। उसी प्रकार श्री दुवाचंद जी को भी वैराग्य भावना उत्पन्न हुई। श्री अमोलक ऋषि जी म. तथा उनके पिता श्री केवल ऋषि जी म. के प्रवचन उन्होंने हैदराबाद में बहुत सुने और अपनी भावना को सुदृढ़ करते रहे। हैदराबाद में प्लेग का प्रकोप हुआ। उन्हें भी कइयों ने डराया कि मर जाओगे। लेकिन वे न घबराए, न हैदराबाद से बाहर ही गए। जब संवत् 1971 (सन् 1914) में श्री केवल ऋषि जी म. का स्वर्गवास हो गया तो श्री अमोलक ऋषि जी म. अकेले रह गए। उन्होंने सोचा, यदि मैं दीक्षा ले लूं तो ऐसे महान

---

1 सब का सहारा

संत की सेवा का सौभाग्य भी मिलेगा तथा आत्मकल्याण का मार्ग भी प्रशस्त हो जाएगा। अपने मन की भावना जब श्री अमोलक ऋषि जी म. के सामने रखी तो वे बोले कि आपका शरीर अत्यंत सुकुमार है, आपसे संयम नहीं पलेगा। मगर आप तो असीम मनोबल के धनी थे, बोले, आपकी कृपा से मैं शारीरिक कष्टों से घबराने वाला नहीं हूं। श्री अमोलक ऋषि जी म. को उनकी दृढ़ता पर भरोसा हो गया तो दीक्षा दे दी और उनका नाम देव ऋषि रख दिया। पहले साल ही तपस्या में जुट गए। 5 अठाइयां की। अगले साल 39 दिन का तप किया। तीन समय ऊंची आवाज में प्रवचन किया और गंभीरता इतनी कि किसी को ये पता नहीं लगने दिया कि तपस्या चल रही है। ऐसे धीर-वीर गंभीर तपस्वी जी का संवत् 1976 (सन् 1919) में देवलोक गमन हुआ।

पुराने संतों महापुरुषों की करणी अद्‌भुत होती थी और करणी का फल अवश्य मिलता है। महापुरुष अपनी गंभीरता के कारण कम बोलते हैं, पर जो बोलते हैं, वह सत्य सिद्ध हो जाता है। इसी ऋषि संप्रदाय के प्रभावशाली संत हुए हैं श्री भीम ऋषि जी म.। ये 18वीं सदी में हुए हैं। उनके बारे में लोगों की धारणा थी कि उन्हें बड़ी-2 लब्धियां प्राप्त हैं। जैसा कि पिपलोद के एक श्रावक को गलित कुष्ठ का रोग था। उसने इनका थूक तीन दिन तन पर लगाया तो उसका रोग खत्म हो गया।

एक बार ये जावरा में पधारे हुए थे। साध्वियों का एक सिंघाड़ा भी वहीं ठहरा हुआ था। एक नवदीक्षित, छोटी आयु की साध्वी का लोच होना था। जैसे ही साध्वियों ने लोच शुरू किया। पहली चुटकी में ही साध्वी जी के सिर की चमड़ी ऐसे उखड़ गई मानो उसने टोपी पहन रखी हो। सभी साध्वियां घबरा गई। अब क्या होगा? छोटी आयु की साध्वी कहीं असाध्य बीमारी से न ग्रस्त हो जाए, ये डर था। जिन शासन की निन्दा का भय भी था। श्रावक जो निकटवर्ती और विश्वसनीय थे उन्हें श्री भीम ऋषि जी म. के पास भेजा और सारी स्थिति समझाई। उन्होंने कहा—घबराने की जरूरत नहीं है। मनोबल रखो। चमड़ी को

सावधानी से सिर पर ज्यों का त्यों जमा दो। ऐसा कभी-2 हो जाता है। इस बात को जनता में मत गाओ, नहीं तो जितने मुंह उतनी बातें होंगी। लोगों में गंभीरता कम है। वे राई का पहाड़ बना देंगे। छोटी सती के परिवार वालों को बरगला देंगे। विरोधी तत्त्व इस बात का मजा लेगा। श्रावकों और सतियों को बात जंच गई और बड़ी कुशलता से चमड़ी सिर पर जमा दी। श्री भीम ऋषि जी ने खुद छोटी साध्वी को संभाला और कहा—ये अपने हाथ की माला तुझे दे रहा हूं। इस पर जाप करती रहना, तेरा सिर भी ठीक हो जाएगा और लोच में भी बाधा नहीं आएगी। साध्वी जी को हौंसला मिल गया और दो महीने में सारी स्थिति सामान्य हो गई।

इस तरह से जीवन में आने वाली समस्याओं को पार करने के लिए गंभीरता की बेहद आवश्यकता है।

लोगस्स के पाठ के अंत में अरिहंत सिद्धों की स्तुति करते हुए लिखा गया है—**'चंदेसु निम्मलयरा आइच्चेसु अहियं पयासयरा, सागर वर गंभीरा सिद्धा सिद्धिं मम दिसन्तु।'** अर्थात् तीर्थंकर देव चंद्रमा से भी अनन्त गुणे निर्मल होते हैं, सूर्य से भी अनन्त गुणे प्रकाशवान् होते हैं तथा सागर से भी अनन्त गुणे गंभीर होते हैं। सिद्ध गति को पाने वाले ऐसे तीर्थंकर भगवन्त हमें भी सिद्धि का मार्ग प्रदान करते हैं।

'अगाध जल संचारी मत्स्यो न याति गर्वताम्,
स्वल्पं तोयं समासाद्य शफरी फरफरायते।'

गहरे और अगाध जल में शयन करने वाला मगरमच्छ कभी गर्व नहीं करता, चंचलता नहीं करता, उछलकूद नहीं करता, जबकि थोड़े से पानी में पड़ी हुई मछली हर समय फरफर करती रहती है। गंभीरता बड़प्पन की निशानी है, चंचलता छुटपन की। यदि कोई आदमी बड़ी उम्र का होकर भी गंभीर नहीं बना तो वह आदमी बच्चा ही है और यदि कोई छोटी उम्र में गंभीर है तो वह बच्चा नहीं, बड़ा है, बुजुर्ग है।

'रघुवंश' में कालिदास ने राजा दिलीप के लिए लिखा है—**'तस्य धर्मरते रासीत् वृद्धत्वं जरसा विना'** उस राजा का शरीर यद्यपि युवा था, परंतु मन में इतनी धार्मिकता थी कि बिना बुढ़ापे के भी बुजुर्गीयत झलक आई थी।

यह बुजुर्गीयत गंभीरता का ही दूसरा नाम है। इसलिए धार्मिक दृष्टि वाला इंसान गंभीर बनने की कोशिश करता है। जो आत्माएं गंभीरता अपनाएंगी, उनका इस लोक में तथा परलोक में कल्याण होगा।

9. छिमा बड़न को चाहिए

साहू गोयम पण्णा ते छिन्नो मे संसओ इमो।
नमो ते संसयातीत सव्व सुत्त महोदही ॥

पूज्य गुरुदेवों की कृपा से जो कुछ सीखा है कुछ देर आपके समक्ष रखेंगे। भव्य जीव धर्म आराधन करें, रत्नत्रय को उज्ज्वल करें, यही हमारी कोटिशः मंगलकामनाएं हैं।

तीर्थंकर भगवंतों की वाणी–

'मंदा य फासा बहु लोह णिज्जा तहप्पगारेसु मणं न कुज्जा,
रक्खिज्ज कोहं विणएज्ज माणं, मायं न सेविज्ज पहिज्ज लोहं।'[1]

मन में विकार इतने धीमे कदमों से प्रविष्ट होते हैं कि मन उनको बुलाने के लिए लालायित हो जाता है। इसलिए जब क्रोध की आहट होने लगे तो उससे अपने को बचाए रखना जरूरी है। मान की मुस्कराहट शुरू होने लगे उसे एकदम पछाड़ दें। माया अपना जाल बिछाना चाहे तो उसकी सेवा लेने से बाज आएं तथा लोभ की पुकार सुनाई दे तो उसे फौरन धक्का देना है। पापों का प्रवेश अपने आप ही नहीं होता है, उनके लिए हम भी तैयारी करते हैं, वातावरण भी सहायता देता है। वर्ना किसी भी बुराई में अपनी कोई ताकत नहीं है। बुराई को जन्म देने और बचाए रखने में मानव आत्मा तथा माहौल दोनों ही सहयोग देते हैं। एक को हम उपादान कहते हैं दूसरे को निमित्त कहते हैं। अकेला उपादान अच्छाई या बुराई में नहीं बढ़ सकता और अकेला निमित्त भी कुछ नहीं कर सकता। निमित्त के बिना अकेला उपादान ऐसा है जैसे शरीर के बिना आत्मा तथा उपादान के बिना निमित्त ऐसा है जैसे आत्मा से रहित शरीर। आत्मा स्थूल शरीर के बिना तो आहार भी नहीं ग्रहण

---

1 उत्तराध्ययन 4 अध्ययन 12 गाथा

करती तथा शरीर भी आत्मा के बिना शव ही होता है। तो आइए, अपने अंतर की पड़ताल करें कि किस प्रकार तरह-2 के बहाने बनाकर पाप अपना कब्जा कर रहा है। एक बड़ा दुर्गुण है हममें 'प्रतिशोध की भावना का'। जब कोई आदमी हमारे सौ उपकारों को भुलाकर हमें लज्जित-प्रताड़ित और दुःखी करता है, हम बरबस सोच बैठते हैं कि इसका भी विनाश हो, इसे भी अपने दुष्कृत्य की सजा मिले।

उपकारिणि विश्रब्धे शुद्धमतौ यः समाचरति पापम्,
तं जनमसत्य संधं भगवति वसुधे कथं वहसि?

तीन तरह के दुष्ट व्यक्तियों को धरती पर रहने का अधिकार नहीं है—

1. जो अपने ऊपर उपकार करने वालों के साथ दुष्टता का व्यवहार करता है,
2. जो उस पर विश्वास करता है, उसके साथ दगा करने वाला तथा
3. जिसका मन साफ है उसके साथ धोखा करने वाला व्यक्ति।

जैसे कि माता-पिता ने हम पर उपकार करके बड़ा किया, उन्हें जवानी के जोश में आकर या बीवी के बहकावे में आकर सताने वाला युवक नराधम होता है।

किसी सेठ ने अपने साधनों के द्वारा एक गरीब आदमी को कारोबार दिया, ऊंचा उठाया, बरसरेरोजगार[1] किया, यदि नया धनी आदमी अपने उपकारी का अहित करने की कोशिश करता है तो धरती पर रहने लायक नहीं है।

गुरुदेवों ने अपनी ममता उंड़ेलकर शिष्य को तैयार किया। ज्ञान ध्यान सिखाकर समाज में प्रतिष्ठा दिलाई लेकिन जरा सा मान-सम्मान पाकर उन्हीं गुरुओं की आशातना करने लग जाए तो वह पापीश्रमण संघ शासन में रहने लायक नहीं है। **'वाइए संगहिए चेव भत्त पाणेण पोसिए, ते चेव खिंसइ बाले पावसमणेत्ति वुच्चइ'** अपनों से चोट खाने

1 आजीविका युक्त

पर मन में कभी-2 प्रतिशोध की ज्वाला अच्छे-2 ज्ञानियों के दिलों में भी सुलगने लगती है। उस प्रतिशोध ज्वाला को शांत करना सरल नहीं है लेकिन जो मानव उस आग को बुझा देते हैं वे ही सच्चे संत हैं। सच्चे धार्मिक हैं, सच्चे आस्तिक हैं। वे मानव ही नहीं, महामानव हैं।

गुजरात के बड़े शहर की घटना है। एक विधवा नारी झबक मां ने अपने पुत्र सुमन को कड़ी मेहनत करके बड़ा किया। उसकी जिन्दगी में दुःखों ने मानो डेरा ही डाल रखा था। शादी के 6 वर्ष बाद उसके पति का देहान्त हो गया था। घर में जो कुछ पूर्वजों से जमा ढका था, सब पति की बीमारी में खप गया। पति के देहान्त के सवा महीने बाद सुमन का जन्म हुआ था। पीहर या ससुराल किसी भी तरफ से कोई सहायता नहीं मिली। प्रसूति का समय बड़ी मुश्किलों में बीता। फिर हौंसला किया कि बेटे को भूखा नहीं मरने दूंगी। शहर के संभ्रान्त घरों में जाकर झाड़ू पोचा कर देती, चूल्हे चौके का काम कर देती, बर्तन मांज देती, कपड़े लत्ते धो देती। दिनभर की कड़ी मेहनत, दिल की ऊंची नीयत तथा सबके लिए मीठे वचनों के कारण सारे इलाके में वह सबके दिलों में समा गई। अपनी जवानी के हर अरमान को कुचलकर केवल अपने पुत्र के विकास की ओर ध्यान लगाए रखती। नौकरी उस जमाने में ज्यादा नहीं मिलती थी लेकिन खर्चा भी कम होने से उसका गुजारा ठीक से चलने लगा। अब उसने सोचा—मैं तो अनपढ़ हूं लेकिन बेटा सुमन पढ़ जाए तो अपने लायक तो हो ही जाएगा, ढलती उम्र में मेरा भी गुजारा हो जाएगा। झबक मां ने सुमन को स्कूल में डाला तो बच्चे की प्रतिभा निखरने लगी। उसे भी पढ़ाई में रस आने लगा। अच्छे नंबर लेकर पास होता तो मां की खुशियों का ठिकाना नहीं रहता। उसकी आशाएं हरी होती जाती। पढ़ाई का खर्चा उस जमाने में ज्यादा नहीं था। फिर भी बढ़ती पढ़ाई के साथ खर्चा भी बढ़ता तो था ही, फिर भी झबक मां दुगुणी मेहनत करके आमदनी बढ़ा लेती। बच्चा भी सुंदर सपने संजोने लगा। स्कूल की पढ़ाई पूरी करते-2 उसने डॉक्टरी करने का मन बना लिया। मां ने देखा, बच्चा होनहार है, इसके लिए मुझे कुछ भी बलिदान

देना पड़े तो दूंगी। अपनी हर आवश्यकता को कतर-कुतरकर भी उसने बेटे को अहसास नहीं होने दिया कि पढ़ाई में कोई दिक्कत आ रही है। सुमन सयाना होता जा रहा था। मां की तकलीफें भी देख रहा था, मगर पढ़ाई की धुन को तो पूरा करना ही था। आखिर करते-2 उसकी M.B.B.S. पूरी हो गई। मां की तमन्नाएं बर[1] आई। खुशियों के दिन आने का आश्वासन हुआ। मां को उसके काम और विवाह की भी फिक्र थी। बेटे का Clinic खुल जाए और चल जाए तथा अच्छे घर की सुघड़ कन्या से शादी हो जाए। सुमन ने शादी से पहले काम करने की सोची और अपना Clinic खोल लिया। काम चलने में कोई देरी नहीं लगी। इसी बीच उसका परिचय एक समृद्ध सेठ नरोत्तम की पुत्री निर्मला से हो गया। उसे जमाने में भी वह परिवार नए जमाने की सोच रखता था। लड़की पढ़ी-लिखी थी। बी.ए. कर चुकी थी। लड़की के पिता की इच्छा थी कि किसी शिक्षित युवक से विवाह हो तथा डॉ. सुमन की इच्छा थी कि पत्नी अमीर हो या गरीब लेकिन शिक्षित और कुछ Modern हो। निर्मला उसकी सोच में फिट बैठ रही थी। दोनों की निकटता बढ़ी और दोनों ने विवाह करने का निर्णय कर लिया। उधर झबक मां अपने मन में ये सोच रही थी कि शरीफ परिवार की किसी घरेलू कन्या से सुमन का रिश्ता हो जाए तो मेरा बुढ़ापा भी शांति से कट जाएगा। एक दिन बेटे से बात बताई तो कहने लगा कि मैंने एक लड़की से बाचचीत चला रखी है और मेरा विचार है कि रिश्ता उसी के साथ होगा। मां को एक झटका सा लगा कि वो लड़का जो अपनी मां को बिना बताए सांस लेना भी पाप मानता था, आज जिन्दगी का इतना बड़ा फैसला ले रहा है और इसकी भनक तक भी मां को नहीं लगने दी और अब तो दखल देने की गुंजाइश भी नहीं छोड़ी। इस आघात को सहजता से भुलाकर उसने विचार कर लिया कि डॉक्टर पढ़ा-लिखा है, मैं अनपढ़ हूं, मुझे उसकी खुशी में खुशी है। उसने होने वाली बहू को बिना देखे ही अपनी स्वीकृति दे दी। जब बड़ा आदमी अपने बड़प्पन को भुलाकर

---

1 फलीभूत

अपने को छोटा मान लेता है, तब उसका बड़प्पन कई गुणा बढ़ जाता है। वह बड़प्पन किसी की नजर में आए अथवा न आए, मगर बड़प्पन तो बड़प्पन रहेगा ही। स्वामी अखण्डानन्द जी के जीवन का एक प्रसंग है। स्वामी जी बड़े प्रभावशाली सनातनी महात्मा थे। वे अपनी व्यास पीठ पर बैठे थे। प्रवचन प्रारंभ होने से पहले उनका एक भक्त उनकी महानता का बखान कर रहा था। जब वह उनकी स्तुति पूरी करके बैठ गया तो स्वामी जी ने प्रवचन प्रारंभ किया। उन्होंने श्रोताओं से कहा, सबसे पहले, आज हम आप लोगों से एक प्रश्न पूछने जा रहे हैं। प्रश्न बहुत सरल है, इसका उत्तर आप सब जानते है तथा आपके उत्तर से ही हमारी और आपकी महानता का पता लग जाएगा। अच्छा, बताइए, 'आप कहां बैठे हैं?' सभी श्रोता बोले 'जी, हम जमीन पर बैठे हैं।' और हम कहां बैठे हैं? भीड़ से उतर आया 'आप चौकी पर विराजमान हैं।' स्वामी जी ने बात को नया मोड़ देते हुए कहा, 'तो आप जमींदार हैं क्योंकि जमीन पर बैठे हैं। मैं चौकीदार हूं क्योंकि चौकी पर बैठा हूं।' अब आप खुद बताइए कि जमींदार बड़ा होता है या चौकीदार? इस तरह उन्होंने खुद को छोटा प्रमाणित कर दिया। ये महान व्यक्तियों का दृष्टिकोण होता है जो उन्हें सामान्य आदमियों से अलग खड़ा कर देता है। यही ऊंचा दृष्टिकोण और व्यवहार उस नारी ने अपनाया। घर की मालकिन होते हुए भी खुद को चौकीदार की तरह कहकर पीछे कर लिया। उसने विवाह को न केवल समर्थन ही दिया, बल्कि अपनी हैसियत के मुताबिक विवाह पर खूब खर्चा भी किया। घर में कोई गहना नहीं था। नए गहने खरीद कर अपनी पुत्रवधू पर चढ़ाए। उस जमाने में भी अकेली झबक मां ने अपनी बची खुची पूंजी से 20 हजार रुपया शादी पर लगा दिया। लोगों को पहली बार अहसास हुआ कि यह नारी कितनी दूरन्देश है जिसने कड़ी मेहनत और मितव्ययिता से इतनी धनराशि बचा रखी थी कि बच्चे को पढ़ाती भी रही और शादी के लिए बचत भी कर ली। चारों ओर उसकी प्रशंसा के गीत गाए जाने लगे।

वह भी अपने सौभाग्य पर इतराने लगी। लायक बेटा, सुन्दर पुत्रवधू, समाज में इज्जत और उसे क्या चाहिए था?

लेकिन उसकी खुशी देर तक नहीं रह सकी। निर्मला को अपनी सास का Life Style कुछ-2 अखरने लगा। मां पुराने जमाने की थी, धार्मिक ख्यालों की थी जबकि वह बिल्कुल नए युग की और फैशन परस्त थी। सास कभी उसके लिबास को लेकर, क्लब पार्टियों में जाने को लेकर पूछताछ भी कर लेती तो उसे टोका-टाकी मानती और चिढ़ जाती। फिर अपने पतिदेव डॉक्टर सुमन के कान भरती। सुमन को लगता कि शायद मां शादी से पूर्णतः सहमत नहीं हो पाई है, इसलिए निर्मला को टोक रही है। फिर सोच लेता कि मां की परवरिश गरीबी के माहौल में, अशिक्षा के दौर में हुई है, वह समृद्धि और शिक्षा का स्तर पचा नहीं पा रही, इसलिए भी कुछ बातें कह देती है। लेकिन अपनी पत्नी के सामने उसने अपनी मां का ही पक्ष लिया। हां, अकेले में मां से कह देता कि इसे कुछ कहने की बजाय मुझे बता दिया करो। मां को बड़ा अजीब लगा कि घर की बहू को प्यार की बात भी नहीं सुहाती। चलो, जैसी इनकी मर्जी। घर की स्थितियां बदलने लगी। निर्मला को अपनी सास फूटी आंख नहीं सुहाती। इसके कपड़े गंदे है, इसे खाना बनाना नहीं आता। सुमन को खाना मैं बनाकर दूं तो ही खाए, मां का बना हुआ न खाए। न जाने क्या-2 उसकी दलीलें होती, क्या-2 उसके तौर-तरीके होते। सुमन अब कन्फ्यूज होने लगा। कौन सही है, कौन गलत। ये निर्णय कर पाना उसके लिए संभव नहीं था। वैसे भी पढ़े-लिखे और अनपढ़ आदमी के बीच अपनी-2 बात पेश करने का फर्क होता है। पढ़ा-लिखा आदमी तर्क और कानून की बातें पेश करता है। अनपढ़ के पास ये सब बातें कम होती है, वह ठेठ दिल से बोलता है। लिहाजा, शर्म के कारण बहुत सी बातें छिपा भी लेता है और शिक्षित आदमी वकील की तरह अपनी बात को सच साबित कर देता है। वैसे सत्य-असत्य का फैसला आज तक कोई कर ही नहीं पाया। सुमन को अपनी मां से प्यार था, तो वह भी सही लगती। बीवी से लगाव था ही

तो उसकी बातें भी सही लगती। कई बार व्यथित भी हो जाता। हां, अब उसे बीच-2 में मां को भी उलाहना देने की आदत पड़ गई। मां कहती बेटा, कोई बात नहीं, ये तो कुछ भी नहीं, हमारे संकट के दिन बीत गए तो ये बातें भी बीत जाएंगी। मगर डॉक्टर निराशावादी हो गया। निराशावाद ऐसा रोग है जो हमेशा अंधेरे में पनपता है, अंधेरे में फलता-फूलता है। रोशनी की आहट होते ही बेचैन हो जाता है।

एक पुरानी कहावत है कि एक परिवार में तीन सदस्य थे। एक बूढ़ी मां, एक बेटा और एक बेटी। बेटा निराशावादी दृष्टिकोण का व्यक्ति था। वह मां से पूछ बैठा, 'मां, क्या हम अपने इस परिवार में तीन के तीन सदस्य ही बने रहेंगे?' आशावादी मां ने उत्तर दिया, 'नहीं बेटे, जब तुम्हारा विवाह होगा तो हम चार हो जाएंगे।' बेटा फिर भी निराशा की भाषा में बोला, 'मां मेरा विवाह होगा तो बहन का विवाह करेंगे, ये चली जाएगी तो हम तीन ही रह जाएंगे। मां ने फिर समझाने का प्रयत्न किया, 'पुत्र ऐसा क्यों सोचता है। विवाह के पश्चात् बहू की कोख फलेगी। रे, इस घर में ललना आएगा और हम चार हो जाएंगे।' पुत्र के निराश मन में एक विचार उभरा, 'मां तू तो अब वृद्धावस्था में है। क्या पता, कब इस संसार से चल बसो, हम तो इस परिवार में फिर वही तीन के तीन। मां बोली, 'पुत्र यदि तुम इस संसार को इस नज़र से देखते रहे तो तुम्हारे समक्ष अनन्त भी तीन का तीन ही रहेगा। अब तो समय ही तुम्हारा समाधान है अतः प्रतीक्षा करो।

उधर, वक्त ऐसे मोड़ पर आ खड़ा हुआ कि सुमन को सारी गल्ती मां की नज़र आती। अब झबक मां को पुराने दिनों की यादें ज्यादा सताने लगी। घोर गरीबी के दिनों में, कम से कम क्लेश कलह तो नहीं था। अब तो यही डर लगा रहता है कि न जाने किस बात को लेकर घर में घमासान छिड़ जाए और एक दिन घमासान हो ही गया। उस घर पर एक भिखारिन आ गई। कुछ मांग रही थी, पहले कभी आया करती थी तो कुछ न कुछ लेकर जाती थी। उसने निर्मला से मांग लिया

तो वह बिफर गई। भिखारिन को बुरी तरह से झिड़क दिया। भिखारिन को ऐसी उम्मीद नहीं थी। वह तो और पीछे पड़ गई। निर्मला गुस्से में आ गई। दोनों की आवाज अंदर झबक मां के कानों में पड़ी तो बाहर आ गई। बेचारी गरीब भिखारिन के साथ ऐसा बर्ताव उसे अच्छा नहीं लगा और बहू से कहने लगी, बेटी, इस गरीब औरत से क्या झगड़ा करना। इसे कुछ न कुछ दे दे और विदा कर। अपने पास कुछ हो तो देने में कुछ हर्जा भी नहीं है। इस घर में जब कुछ भी नहीं था तब भी कोई गरीब गुरबा खाली नहीं गया और आज तो भगवान् की दया से सब कुछ है, इसलिए देना ही चाहिए। क्लेश न बढ़े, हो हल्ला न हो, इसलिए झबक मां अंदर गई और कुछ सामान लाकर उस भिखारिन को दे दिया, वह लेकर चली गई। मामला शांत हो गया। लेकिन कहां शांत हुआ? मामला तो और उग्र हो गया। निर्मला ने ये Prestige issue बना लिया और डॉ. सुमन को भड़का दिया कि तुम्हारी मां ने एक भिखारिन के आगे मेरा घोर अपमान किया है। इसने मुझे, मेरे घरवालों के बारे में बहुत बुरा-भला कहा है। मुझे नीच घर की लड़की कहा है। डॉक्टर को इतना गुमराह किया, इतना झूठ सच बताया कि वह भी अपना विवेक खो बैठा। उसने सोचा, मेरी मां मेरी जिन्दगी को नरक बनाने पर तुली हुई है। इसे निर्मला से घोर नफरत है। निर्मला ने आखिरी हथियार चला दिया—इस घर में या तो यह बुढ़िया रहेगी या मैं रहूंगी। यदि उसे रखना है तो उसे रख लो, मैं अपने पीहर चली जाती हूं। डॉ. सुमन आगबबूला अपनी मां के पास आया। उसकी कोई बात न पूछी, न सुनी, बस फरमान जारी कर दिया। 'बुढ़िया, तू घर से जितनी जल्दी हो उतनी जल्दी निकल जा, नहीं तो मुझे धक्का देकर निकालना पड़ेगा।' कृतघ्नता की हद थी। झबक मां ने वहां से निकलने में अपना हित समझा। अपना जरूरी सामान लिया, कुछ अपने हाथों से कमाए रुपये-पैसे लिए और घर से बाहर निकल आई। चलते-2 भी यही कहकर गई कि बेटा, तू सुखी रह, ये बहू भी सुखी रहे। तेरा घरबार-कारोबार फले-फूले। शहर से बाहर किसी गरीब बस्ती में एक

झोपड़ी में जाकर रहने लगी। किसी को यह भी अहसास नहीं होने दिया कि मैं एक डॉक्टर की मां हूं और घर से निकाली गई हूं।

वहां रहकर अपने मूल स्वभाव में आ गई। मेहनत करके गुजारा कर लेती। आसपास की बहू-बेटियों को जीने के हुनर सिखा देती। अकेले में अपने प्रभु का सुमरण कर लेती। न किसी से गिला शिकवा, न तेर-मेर। बेटे की याद आती तो उसके लिए दुआ करती।

हां, बेटे को भी कोई शांति नहीं मिली। मां को घर से निकालकर भी वह निर्मला को संतुष्ट नहीं कर सका। किफायतसारी[1] की बात कहता तो वह बिदक जाती। Clinic भी ठीक ठाक सा ही चल रहा था। खास तरक्की नहीं थी। कभी कभार मां को लाने की मन में आती तो निर्मला से डर जाता। फिर उसे पता भी नहीं था कि मां है तो कहां है?

जिन्हां पुत्तां लइ ने माप्यो, सौ-सौ सुक्खां ने मनावंदे,
थां-2 मंगदे नियाजां, थां-2 मत्थे ने घिसावंदे,
बड्डी होके औलाद जदों करदे परे,
ओस बेले मेरे रब्बा मां-बाप की करे...।

लेकिन धन्य है वे आत्माएं, जो हजारों कष्ट सहकर भी हंसती मुस्कराती हैं। वे ही मानव बड़े होते हैं जो मुश्किलों की भट्टी में तपते हैं।

'पावक की लपटों में पड़कर सोना कुन्दन बन जाता है,
भाव शुद्ध हो नन्हा धागा रक्षा बंधन बन जाता है,
संघर्षों की भट्टी में तप जाना छोटी बात नहीं है,
त्याग तपस्या से मानव माथे का चंदन बन जाता है ॥

पुराने संत सुनाते थे कि दही बड़ा किस तरह बड़ा बना है।

---

1 मित व्यय

दोहाः–

उड़द बड़े में एक दिन बहस हुई घनघोर,
सुनो ध्यान देकर सभी देगी मन झकझोर।

तो सुनिए बड़े की आत्म व्यथा या संघर्ष कथा–

दोहाः–

एक दिवस बोला उड़द अपनी त्यौरी तान,
मुझसे ही पैदा हुआ बड़ा बना शैतान ॥

उड़द ने जब बड़े को शैतान कहा तब मजबूरन बड़े को जवाब देना पड़ा–

राधेः– हम तेरे जैसे थे पहले इसमें कोई ऐतराज नहीं,
पर हमने जो-2 कष्ट सहे ये कहने में कुछ लाज नहीं,
पहले जमीन में दबे रहे गर्मी सर्दी से अकड़ गए,
धीरे-2 बाहर निकले तब सुनो वहां के जुल्म नए,
आंधी के झोंको ने घेरा पानी कम ज्यादा भी बरसा,
ओलो पालों से बचे रहे तब दुश्मन ले आया फरसा,
जड़ से काटा अरु पीटा भी नंगा कर दिया बदन सारा,
सब कुटुम्ब छुटा बोरी में भरा बाजार फिरा मारा मारा ॥

बड़ा अपनी उत्पत्ति की संघर्ष गाथा सुना रहा है उड़द को। अब उड़द से आगे की दास्तान भी सुनिए–

यहां तक तो हम तुम साथ रहे ले गया हमें घर हलवाई,
उसने चक्की से दाल दली पानी में रात भर गलवाई,
जब फूल गई मेरी काया ऊपर से चमड़ी खिंचवाई,
सिलबट्टे से मुझको पीसा तब पीठी कहकर बतलाई,
हम बड़े बने कुछ दुःख सहके पूछो न तुम घबराओगे,

सुनते ही सुनते रो दोगे और साथ में मुझे रुलाओगे,
फिर तेल की गर्म कढ़ाई में रह रह के मुझको तड़पाया।
मैं खूब नाचा और खूब हंसा यहां तक कि पेट फूल काया,
तब हलवाई ने झट सोचा कमबख्त न कच्चा रह जावे,
तकवे से पेट छेद डाला कहीं दर्द किसी के कर जावे।

बड़ा अपना दर्दे बयां किस अंदाज से कर रहा है। बड़ा ही रोचक और रोमहर्षक वर्णन है—

रे उड़द मूर्ख अब क्यों चुप है मेरी कितनी दुर्दशा भई,
तिस पर भी नमक मिर्च छिड़का और डाला मुझ पर खूब दही।
फिर क्या था बूढ़े बालक का दिल मेरे ऊपर ललचाया,
इतने दुःख सहके बड़ा नाम जब अपना ज्यों त्यों करवाया ॥
अब बता उड़द तूने भी कुछ समझा कि कैसे बने बड़े,
बिन कष्ट उठाए दुनिया में जैसे थे तैसे रहे खड़े ॥
ये मेरी सहनशीलता से तूने भाई कुछ सबक पढ़ा,
जो दुश्मन हलवाई मेरा उसने अपने सिर लिया चढ़ा।
हर गली और बाजारों में फिर मुझे बेचता फिरता है,
इतने दुःख देकर बड़ा वही अपनी जबान से कहता है ॥
बस भैया लाल समझ लेना जो गिरता वही संभलता है,
जो अपने को छोटा समझे वही हार गले का बनता है ॥

भले ही झबक मां ने कोई शास्त्र या ग्रंथ नहीं पढ़ा था। धर्म-कर्म की बारीक बातें नहीं समझती थी मगर जानती थी कि यदि मैं इन संकट के दिनों को हँसकर बिता दूंगी तो भगवान् मेरे बुरे कर्मों को खत्म कर देंगे। हिन्दू धर्म के एक महात्मा ने अपने प्रवचन में एक बार कहा था—'कर्म फल मनुष्य को भोगने ही पड़ेंगे। पर जो ईश्वर भक्त हैं वह कर्मफल भोगते हुए रोता नहीं है। मन में संतुलन बनाकर बिना विचलित हुए दुःख भोग लेता है। ईश्वर की विशेष कृपा द्वारा वह शीघ्र ही दुःखों से मुक्त हो जाता है। जैसे कोई कैदी यदि शराफत के साथ,

कैद के नियमों का पालन करके अपना समय बिताए तो सरकार उसे निश्चित समय से पहले भी रिहा कर देती है। ऐसे ही यदि मानव ये समझ ले कि सारी दुनिया कर्मों के लेखे-जोखे की कारागार है, यहां जो व्यक्ति बिना छल-कपट के जीवन में आने वाले सुख-दुःखों को भोग लेता है उसे ईश्वर शीघ्र कष्टों से मुक्त कर देता है।

उस देवी के मन की स्थिति बड़ी संतुलित थी। वह तो उस हालत में भी पूर्ण संतुष्ट थी। उसका तो वो हाल था कि एक महात्मा नदी में नहा रहे थे। अचानक मगरमच्छ ने पैर काट दिया। खून बहने लगा। महात्मा शांत मन से तैर कर किनारे पर आ गया और बोला 'हे ईश्वर, तेरा धन्यवाद। एक आदमी यह सब देख बड़ा हैरान हुआ। उसने उस अनोखे व्यवहार का कारण पूछा। महात्मा कहने लगा 'मैं भगवान् का शुक्रगुजार हूं कि पाप के मुख में न पड़कर मगरमच्छ के मुख में पड़ा हूं। यहां से तो फिर भी मेरा उपचार संभव है। मगर पाप के रसातल में गिर जाने के बाद तो मैं जन्म-जन्मांतर तक भटकता रहता।'

ऐसा ही ऊंचा दृष्टिकोण उस नारी का था। उसने संन्यास के कपड़े नहीं पहने थे, पर जीवन संन्यासी से कम नहीं था। संन्यास उसके अंदर प्रकट हुआ था। गरीब बस्ती में भी वह सबकी सेवा करती थी। उम्र ढल ही रही थी। खुद बीमार सी रहती, कमजोर हो गई थी लेकिन फिर भी उसे पता लग जाता कि फलां झोपड़ी में कोई बीमार है तो तत्काल वहां जाकर उसकी सेवा में जुट जाती। उसने जो कुछ किया, आत्मशांति के लिए किया। किसी संस्था या संगठन से नहीं जुड़ी थी, पर अपने आप में एक संस्था थी।

सेवाभावी का दृष्टिकोण कैसा होता है, ये समझना भी जरूरी है। सन् 1983 में मदर टेरेसा को नोबल पुरस्कार मिला। उस समय उनसे जो इन्टरव्यू लिए गए, उसकी एक झलक देखिए—मदर, आप बताइए कि भयानक कोढ़ और हैजे से ग्रसित होकर कै कर रहे रोगियों को साफ-सुथरा करते समय आपको घृणा नहीं होती।' 'नहीं भाई, बिल्कुल

नहीं होती।' 'मदर, आपके पास तो कई रोगी एकदम गंदे और दुर्गंध भरे कपड़ों में लिपटे आते हैं फिर आप उनकी सेवा करते हुए कैसा महसूस करती हैं?' 'देखिए भैय्या, मैं आपके सवाल को समझ रही हूं। परंतु आप यह समझें कि अपने पास आए प्रत्येक रोगी में भगवान् की छवि देखती हूं और मन में महसूस करती हूं कि भगवान् बीमार है, मुझे इनकी नर्स बनकर तीमारदारी करनी है और भोजन कराके संतुष्ट करना है। बीमार और तड़पते लोगों की नींद मेरे अपने ईश्वर की नींद है।'

मदर टेरेसा गरीब और अमीर में कोई फर्क नहीं मानती थी। काठमाण्डू में उनका भव्य समारोह में स्वागत हो रहा था। जब उन्होंने दान की अपील की तो एक लंगड़ा भिखारी लाठी टेकता आगे आया और उनके हाथ पर चवन्नी रख दी। मदर उसे आशीष देते हुए बोली, 'भैय्या, तुम्हारा ये दान मेरे नोबेल पुरस्कार से भी बढ़कर है।'

दुनिया में एक से बढ़कर एक ऊंची आत्माएं है, कुछ नामवर है, कुछ गुमनाम रहकर अपनी निर्जरा कर रही हैं। झबक मां भी उसी किस्म की नारी थी। एक बार खुद बीमार पड़ गई। बीमार इतनी कि प्राण खतरे में पड़ गए। बस्ती के लोग उठाकर डॉक्टर के पास ले आए। वे नहीं जानते थे ये डॉक्टर सुमन इस बुजुर्ग महिला का बेटा है। वो तो गुमनाम मरीज की तरह उसे लाए और ईलाज शुरू करवा दिया। डॉ. सुमन ने भी साधारण मरीज समझकर उसका ईलाज कर दिया और कुछ दिनों के बाद उसे छुट्टी दे दी। साथ आने वाले गरीब आदमियों के हाथ में डॉक्टर ने बिल थमा दिया। उन्होंने कहा कि हम घर जाकर पैसा इकट्ठा करके आपके बिल चुका देंगे। झबक मां जब स्वस्थ हो गई तो झोंपड़ी में जाकर साफ-सफाई में लग गई। उसे ईलाज के दौरान ये तो ध्यान भी नहीं आया था कि इस ईलाज का खर्चा देना होगा या नहीं। परंतु बस्ती के लोगों ने उसके हाथ पर बिल थमा दिया और कहने लगे, माता जी, ये डॉ. सुमन का बिल है, जितना आप से बने उतना आप दे दो बाकी हम सब मिलकर इकट्ठा कर के उसे चुका

देंगे। झबक मां की आंखों के आगे अंधेरा छा गया। उसने सोचा, मेरा बेटा, अपनी पत्नी के बहकावे में आकर मुझसे भी इलाज के पैसे मांग रहा है। क्या मैंने उससे कभी पैसों का सौदा किया था। आज उसकी इतनी हिमाकत कि अपनी सगी मां से भी पैसे वसूल रहा है। ऐसे गिरे हुए बेटे को कुछ तो सबक सिखाना ही चाहिए। क्या संसार में कर्तव्य, धर्म, सेवा आदि की कोई कीमत नहीं है। क्या पैसा इतना बड़ा हो गया कि मां बेटे के रिश्ते भी चांदी की तराजू पर तुल गए। मुझे भी कुछ कठोर होना होगा वर्ना उसका नशा नहीं उतरेगा और उसने एक पत्र तैयार करवाया जिसमें उसने लिखा कि बेटा सुमन, तूने मेरे ईलाज के बदले में 500 रुपये की मांग की है तो सुन, मैं भी तुमसे कुछ मांगने का हक रखती हूं। मैंने 9¼ महीने अपनी कोख में तुझे पाला—उसके 9 हजार रुपये तो कम से कम बनते ही हैं। फिर मैंने तेरा पालन पोषण किया, पढ़ाई करवाई, डॉक्टरी का सारा खर्चा उठाया उसके भी कम से कम 24 हजार रुपये बनेंगे। और तेरी शादी में जेवर, कपड़े, खाना-पीना सब मिलाकर 20 हजार रुपये का खर्चा मैंने किया। इस तरह मेरे तेरे ऊपर 53000 रुपये कर्ज के तो कम से कम बनते ही हैं। इसमें से अपने 500 रुपये काटकर बाकी मुझे लौटा दे और इसके बाद मां और बेटे का रिश्ता खत्म। झबक मां के भावों को गायन की भाषा में बोलेंगे—

राधेश्यामः—

बेटा फीस जो मांग लेई तो मैं भी कुछ भेज हिसाब रही
हृदय धड़कता नैन बरसते, आत्मा मेरी कांप रही।
सवा नौ महीने रखा गर्भ में 9 हजार बन जाता है
जन्म दिया और किया स्याना 24 हजार बन जाता है।
शादी में भी खर्च किया जो बीस हजार था जमा किया
53 हजार है बना रे बेटा लिखकर पत्र है भेज दिया।
काटो बिल अपना बेटा और शेष रकम हूं मांग रही
हृदय धड़कता नैन बरसते, आत्मा मेरी कांप रही ॥

उस पत्र को भेजने से पहले झबक मां का दिल फट-2 आया, आंखे रोई, आंसुओं से कागज गीला हो गया। जैसे ही पत्र डॉक्टर की मेज पर गया, उसे सारा माजरा समझ में आ गया। एक बात तो ये कि उसकी इतनी अच्छी Practice नहीं थी कि वह 50 हजार रुपये निकाल कर किसी को दे सके। दूसरी बात ये कि वह अपनी मां को पहचानना तक भूल गया था। वह बीमार है या स्वस्थ, ये भी पता लगाना छोड़ दिया था। ऐसी कृतघ्नता, नीचता एवं अधमता। मैं दुनिया का उपचार करता हूं और सब कुछ होते हुए भी मां की परवाह नहीं कर रहा। जिस मां ने मेरे लिए अपनी जिंदगी कुर्बान कर दी वह मां लावारिस, लापता जिंदगी बसर करने के लिए मजबूर हो रही है। धिक्कार है मुझे। उसने तुरंत निर्णय कर लिया, ऐसा पाप अब नहीं करूंगा। निर्मला के बहकावे में जो कर दिया उसका प्रायश्चित तो अब मां की सेवा से संभव होगा। मां के पत्र पर अक्षर कम थे, आंसू ज्यादा थे। यही हाल अब डॉक्टर का था। उसके रोम-2 से पश्चाताप झलक रहा था। उसने Clinic बंद किया, गाड़ी उठाई और सीधा मां की झोपड़ी में पहुंच गया। मां के चरणों में गिरकर माफी मांगी और घर चलने को कहा। मां बोली, घर जाने से निर्मला को परेशानी होगी। मैं यहां शांति से हूं। जब दिक्कत होगी, तब तुझे बता दूंगी। लेकिन डॉक्टर तो पैर पकड़कर बैठ गया। कहने लगा, मां इस अधम पुत्र को माफ कर दे। मैं ही नालायक हूं, जो निर्मला की बातों में आ गया। वह घर तेरा है, न मेरा न उसका। झबक मां ने पहचान लिया कि इसका मन साफ हो गया है अब इसे अधिक संताप देना वाजिब नहीं। वह अपने लाडले बेटे के साथ घर आ गई और डॉ. ने निर्मला को कह दिया कि मां आई हैं उनको सिर झुकाओ, इनका कमरा साफ करो और खाना तैयार करो। निर्मला समझ गई कि अब यदि मां की कद्र करूंगी तो तेरी भी कद्र रहेगी वर्ना उपेक्षित हो जाऊंगी। इसी बात को गीत की शैली में पेश करना है—

आंसू ही आंसू डाले थे और नहीं कुछ भी था लिखा
आंसू की भाषा पढ़ बेटे को मां की ममता का राज़ मिला।

मां मां कहता गिरा चरणों में, आंसू से पांव पखाल रहा।
मां ने भी लगाया सीने से और प्यार का सिर पर हाथ धरा।
पत्नी ने जब नक्शा देखा वो भी सब कुछ है भांप गई।
हृदय धड़कता नैन बरसते आत्मा मेरी कांप रही ॥

मां उस आत्मा को कहते हैं जिसमें क्षमा की शमा जलती रहती है। जहां बदले की भावना का प्रवेश नहीं होता। ऐसी महान् आत्माओं ने ही धरती को जीवन योग्य बनाया है। भगवान् महावीर क्षमा के सागर थे और यही उनकी वाणी का सार है। उनके जीवन और संदेश अलग-अलग नहीं थे। जीवन से वाणी का प्रवाह निकला और वाणी के अनुसार ही उनका जीवन चला। ऐसे प्रभु महावीर के हम अनुयायी हैं। हम भी उनके उपदेशों का अनुसरण करें। जो भव्य आत्माएं क्षमा के इस पावन संदेश को अपने जीवन में उतारेंगी, उनका यहां भी कल्याण होगा, आगे भी कल्याण होगा।

10. संभल संभलकर चलो

साहू गोयम पण्णा ते छिन्नो मे संसओ इमो।
नमो ते संसयातीत सव्व सुत्त महोदही ॥

पूज्य गुरुदेवों की कृपा से जो कुछ सीखा है कुछ देर आपके समक्ष रखेंगे। भव्य जीव धर्म आराधन करें, रत्नत्रय को उज्ज्वल करें, यही हमारी कोटिशः मंगलकामनाएं हैं।

तीर्थंकर भगवंतों की वाणी—

'चरे पयाइं परिसंकमाणो जं किंचि पासं इह मन्नमाणो,
लाभंतरे जीविय बूहइत्ता पच्छा परिण्णाय मलावधंसी' ॥[1]

हे भव्य आत्मा, इस संसार में कदम-2 पर जाल बिछे हुए हैं। इसलिए बच-2 कर अपने कदम रखना। इस जीवन को किसी ऊंची कमाई के लिए समर्पित कर दे ताकि जीवन के अंतिम समय तक तू मैल से मुक्त होकर ज्ञानवान् बन सके।

इस जीवात्मा का ये बड़ा दुर्भाग्य रहा है कि वह अनन्त ज्ञान का पुंज होकर भी आत्मा के ज्ञान से वंचित है। वह जानता तो बहुत कुछ है, मगर अपने भले बुरे का ज्ञान उसे नहीं है। उसने धरती, पाताल, आकाश के चप्पे-2 का ज्ञान हासिल कर लिया, मगर अपनी जिदंगी के लक्ष्य का ज्ञान आज तक नहीं कर पाया, ये कैसी विचित्र विडंबना है—

'ढूंढने वाला सितारों की गुजरगाहों का
अपने अफकार[2] की दुनिया में सफर कर न सका,

---

1 उत्तराध्ययन 4 अध्ययन 7 गाथा
2 चिंता

जिसने सूरज की शुआओं[1] को गिरफ्तार किया,
जिंदगी की शबे-तारीक[2] सहर कर न सका।'

जो आत्माएं अपने को नहीं जान पाती, वे संसार को भी सही ढंग से नहीं जान पाती। संसार के संबंध में भी जो ज्ञान उन्हें प्राप्त होता है, वह रागद्वेष के प्रिज्म से गुजरता हुआ आता है, इसलिए वह विकृत ज्ञान होता है। श्रमण भगवान् महावीर स्वामी का कथन है कि संसार का हर पदार्थ जिस पर हम मोहित हैं, एक भयावह जाल है लेकिन हम उसे पहचान नहीं पा रहे। संस्कृत के प्रसिद्ध नीतिग्रंथ पंचतंत्र में एक कबूतरों के झुण्ड की कहानी आती है। चित्रग्रीव नामक कपोतराज अपने 500 अनुयायियों के साथ आकाश में उड़ता-2 एक निर्जन वन को पार कर रहा था। वहां उन्हें जमीन पर बिखरे हुए अनाज के दाने नज़र आए। कबूतरों को कुछ तो भूख लगी हुई थी, कुछ अनाज के दर्शन हो गए। इसलिए कहने लगे—हम तो यहां नीचे उतर कर अन्न चुगेंगे, फिर आगे बढेंगे। चित्रग्रीव कहने लगा, इस निर्जन इलाके में अनाज के दानों का बिखरा होना संदेह पैदा करता है। न यहां खेत है, न खलिहान है, न बस्ती है कि कोई दयालु दाने दान में बिछा दे। इसलिए ये शंका का ठिकाना है। मेरी सलाह तो ये है कि हमें इन दानों के प्रलोभन में उलझना नहीं चाहिए। बल्कि अपनी यात्रा जारी रखनी चाहिए। लेकिन जवानी के जोश में उन्हें अपने बुजुर्ग नेता की सलाह नहीं सुहाई। सभी अड़ गए कि हम तो दाने चुग कर ही आगे चलेंगे। चित्रग्रीव को मजबूरन झुकना पड़ा और सभी पक्षी दाना चुगने जमीन पर उतर आए। उतरते समय भी उन्होंने वहां बिछे जाल को नहीं देखा। **'उतावला सो बावला। धीर सो गंभीर'।** दाने चुगकर जैसे ही उन्होंने उड़ने की कोशिश की तो असफल। उनके पंजे जाल में फंस चुके थे। 'अब पछताए होत क्या।' काश कि वे दानों के ऊपर बिछे जाल को खुद देख लेते या फिर अपने बुजुर्ग नेता के कहने को मान लेते या इस

1 किरणें 2 अंधेरी रात

प्रकार के पुराने किस्सों से कुछ होश या सबक ले लेते। **'से पुण एवं जाणिज्जा, सहसम्मुइयाए, परवागरणेणं, अन्नेसिं वा अंतिए सोच्चा'** कुछ लोग जिंदगी की सच्चाई को स्व-स्मृति से, कुछ पर व्याकरण से तथा कुछ औरों के घटना चक्र को सुनकर बोधि को प्राप्त हो जाते हैं। बोधि को प्राप्त कुछ एक महान् आत्माओं का जीवन चरित्र सुनाऊंगा जिनमें से एक थे पूज्यपाद शांत आत्मा गणावच्छेदक श्री बनवारी लाल जी म. जिनकी चरण शरण में मुझे भी एक साल का स्वर्णिम समय बिताने का सौभाग्य मिला था तथा दूसरे हैं पंजाब के युवाचार्य पंडित श्री शुक्ल चंद्र जी म.। जो पूज्यपाद शेरे पंजाब आचार्य श्री कांशीराम जी म. के शिष्य तथा पूज्य गुरुदेव वाचस्पति श्री मदनलाल जी म. के प्रमुख साथी थे, समर्थक थे। दोनों आत्माएं वैराग्य से ओतप्रोत थीं।

पूज्यपाद श्री बनवारी लाल जी म. का जन्म तीतरवाड़ा में हुआ था। यू.पी. के कांधला के निकटवर्ती तीतरवाड़ा गांव में जैन समाज के सैंकड़ों घर थे। जब भी साधु-साध्वी उस गांव में जाते थे तो बड़ी चहल-पहल और रौनक होती थी। पुराने संत सामायिक संवर की छटा देखकर कहते थे कि ये तीतरबाड़ा नहीं, हंसों का बाड़ा है।

तो लिहाजा, श्री बनवारी लाल जी म. उस धरती के लाल थे। उनका जन्म साल विक्रमी संवत् 1929 (सन् 1872) था। मां का नाम नन्हीं देवी और पिता श्री लखपत राय जी थे। तीतरवाड़ा के अधिकतर जैनों का गोत्र गर्ग है। श्री बनवारी लाल जी म. इसी गोत्र में पैदा हुए थे। छोटी उम्र से ही जागृत आत्मा थी। अन्तर्मुखी जीवन था। दीन दुनिया से अलग रह कर ज्ञान ध्यान में उनका मन लगता था। लेकिन पुराना जमाना था, छोटी उम्र में ही विवाह-शादी हो जाती थी। वे भी छोटी अबोध अवस्था में इस बंधन में बांध दिए गए। उम्र बढ़ती गई तो उतना ही वैराग्य बढ़ता गया, उतनी ही जिम्मेदारियां भी बढ़ती गई। एक बेटी, दो पुत्र भी हुए। इतना अनुकूल माहौल होते हुए भी उनका मन तो यही कहता था कि ये सब जाल के नीचे बिछे हुए दाने हैं। मुझे इनमें

अपनी आत्मा को उलझाना नहीं है। परिवार और समाज की ओर देखते तो लगता था घर में रहकर, कारोबार धंधा चलाते हुए बाल-बच्चों को पालूं। दूसरी तरफ, आत्मा कहती कि ये रिश्ते-नाते तो इस जीव आत्मा ने अनन्त बार जोड़े और निभाएं हैं। लेकिन इनसे निकलने का मौका तो अब आया है। जब तीसरा बच्चा बिल्कुल दूध मुंहा था, एक रात घर से निकल पड़े। जिस तरह महात्मा बुद्ध अपने पुत्र राहुल के जन्म की रात महलों को छोड़कर वनों में चले गए थे। **'कबीरा खड़ा बाजार में लिए लुकाठी हाथ, जो घर फूंके आपुनो चले हमारे साथ।'** जिन साधकों ने अपनी ममता के सूत्रों को छिन्न-भिन्न कर दिया है, अपने स्नेह की दीवार पर खड़े किए संबंधों की झोंपड़ी को आग लगा दी है, वही घर छोड़ने का साहस कर सकते हैं। श्री बनवारी लाल जी चलते-चलते श्री बधावाराम जी म. की सेवा में मूनक पहुंचे। अपने वैराग्य के भाव प्रकट किए। उन्होंने अपने आने का समाचार तीतरबाड़ा पहुंचा दिया। घर वाले तो गुस्से में थे ही, बड़े-छोटे सब पहुंच गए। साथ ही उनकी धर्मपत्नी भी अपने दूध मुंहे पुत्र को लेकर आ गई। बड़ी गर्मागर्म बहस हुई। बहुत कलह-झगड़ा सा हो गया। हो हल्ला मचा दिया। बनवारी लाल जी घर जाने को तैयार नहीं, घर वाले आज्ञा देने को तैयार नहीं। गुस्से में घरवाली ने छोटे बच्चे को श्री बनवारी लाल जी म. की गोद में पटक दिया और कह दिया, मैं नहीं कर सकती तीन-2 बच्चों का गुजारा, तू ही संभाल, मैं तो जा रही हूं। जो होगा, वो देखा जाएगा। मामला बड़ा संगीन हो गया। पूज्य श्री बधावाराम जी म. भी इस हंगामे से हैरान हो गए। उन्होंने श्री बनवारी लाल जी को कहा—"भाई, तेरे पीछे तो काफी उलझनें लगी हुई है, पहले उन्हें सुलझा फिर दीक्षा की सोचना।" श्री बनवारी लाल जी के लिए ये दरवाजा भी बन्द हो गया। अंततः घर आ गए। एक मोर्चा खोया था, पर पस्त नहीं हुए थे। संकल्प वही था। दिल में एक निश्चय था कि कुछ भी हो जाए, संसार में फंसना नहीं है। उनका प्रण था Do or die **'कार्यं वा साधयेयं देहं वा**

पातयेयम्' मुझे अपना लक्ष्य प्राप्त करना है चाहे इसके लिए शरीर की कुर्बानी भी क्यों न देनी पड़े।

''जन्म लेते हैं हजारों जीने वाले चन्द हैं,
हर दरीचे जिन्दगी के बुज़दिलों पे बंद है।''

घर आकर वही वैराग्यमय जीवन प्रारंभ हो गया। सामायिक संवर के अलावा अन्य किसी कार्य में रुचि ही नहीं थी। एक ही ख्याल, एक ही ख्वाब, एक ही धुन कि मुझे इस नश्वर संसार में नहीं उलझना। संयम पालकर आत्म कल्याण करना है। एक दिन घर में बैठे थे। किसी हितैषी का आना हुआ। बात चली, इस बनवारी को कैसे समझाएं? उसको भी न जाने क्या सूझी, कहने लगा—ये सब दिखावा है। जरा सी सख्ती करो, बच्चू को नानी याद आ जाएगी। इसे कह दो, तेरी एक आंख फोडेंगे, गज बरगा सीधा हो जाएगा।

श्री बनवारी लाल जी ने उस महानुभाव की बात सुनी और खुद ही आगे आ गए। कहने लगे, आप एक आंख फोड़ने की कह रहे हैं, अगर आप दोनों आंखे भी फोड़ दें तो भी दीक्षा का संकल्प नहीं छोडूंगा। यदि सिर काट दोगे, वो भी झेल लूंगा, मगर संसार मोह में फंसने का इरादा नहीं बनाऊंगा।

'तीर तलवार नीज नेजो खंजर बरसें,
बिजलियाँ चर्ख से कोह से पत्थर बरसें,
सारी दुनिया की बलाएं मेरे सर पर बरसें,
खत्म हो जाए हर इक रंजो मुसीबत मुझ पर।
अगर धर्म में जुम्बिश हो तो लानत मुझ पर।'

इस Point पर आकर परिवार को झुकना पड़ा और बनवारी लाल जी परिवार की टूटी-फूटी मंजूरी लेकर घर से निकल पड़े। अब वे मूनक न जाकर राजस्थान में चले गए। ये सोचकर कि मूनक अपना इलाका

है। घर वालों, रिश्तेदारों का निरन्तर हस्तक्षेप रहेगा। राजस्थान की ओर जाने में कोई भी आदमी सौ बार सोचेगा। संवत् 1953 (सन् 1896) में श्री जवाहरलाल जी म. जो पूज्यपाद चारित्र चूड़ामणि श्री मयाराम जी म. के गुरु भाई थे, का चातुर्मास बेगूं कस्बे में था। यह चित्तौड़गढ़ जिले में पड़ता है वहां जाते ही गुरु चरणों में अर्पित हो गए।

अब सौंप दिया इस जीवन का सब भार तुम्हारे हाथों में,
है जीत तुम्हारे हाथों में और हार तुम्हारे हाथों में।

शिष्य वही है जो जिन्दगी की बागड़ोर गुरुदेवों के हाथों में सौंप देता है। उसकी अपनी कोई मर्जी नहीं होती। उसके लिए गुरु कहो, भगवान् कहो, धर्म कहो, एक बात है। उनके साथ वह Connected हो जाता है।

ना खुदा को छोड़कर जिसकी खुदा पर है निगाह,
हर तरह महफूज किश्ती उसकी तूफानों में है।

उसे डूबने का कोई डर नहीं, खतरा नहीं होता। वे डूबने को डूबना ही नहीं मानते। वे उस गहराई को छू लेते हैं कि उन्हें जिन्दगी का सार हासिल हो जाता है।

जरा दरिया की तह तक डूब जाने की हिम्मत कर,
फिर तो ऐ डूबने वाले किनारा ही किनारा है।

एक बड़ा प्यारा प्रसंग है कि नदी के किनारे आश्रम में आचार्य अपने शिष्यों को उपदेश दे रहे थे **'सत्य हमेशा ऊपर तैरता है, झूठ नीचे डूब जाता है। तैरना जीवन है, डूब जाना मृत्यु है।'** अगले दिन एक शिष्य समिधा (यज्ञ की लकड़ी) एकत्र करने पेड़ पर चढ़ा। एक समिधा हाथ से छूटकर नदी में गिरी और पानी में डूब गई। लेकिन डाली के साथ जुड़े पत्ते टूटकर पानी पर तैरते रहे। शिष्य को आचार्य का पाठ

स्मरण हो गया और एक शंका उठी 'जिस डाल ने पत्तों को आश्रय दिया वह तो डूब गई और स्वार्थी पत्ते पहले डाल का आश्रय लिए रहे, अंत में उसे छोड़ गए और तैर रहे है। स्वार्थ तैर रहा है, परमार्थ डूब गया।'

शिष्य ने आचार्य के पास आकर अपनी शंका बताई तो आचार्य ने समाधान दिया। 'तात, परमेश्वर सर्वाधार है जिसका आश्रित सर्वदा ऊपर ही रहता है। डाल भी इसी गुण की उपासना कर रही है। वह परमेश्वर का आधार लेकर डूबी नहीं है, वरन् अपने पत्तों के माध्यम से बता रही है कि मैं सुरक्षित हूं। ये पत्ते उस डाली के संदेशवाहक के रूप में दिख रहे है जबकि डाली गुप्त रूप से संदेश दे रही है। सत्य हमेशा तैरता है, असत्य ही डूबता है।'

गुरु चरणों में पहुंचने के बाद श्री बनवारी लाल जी का अंग-2 अनन्त आनन्द के सागर में तैरने लगा। उन्हें किसी वस्तु या पदार्थ का लगाव नहीं रहा। एक रोज भीषण गर्मी थी। उन्हें प्यास लग रही थी। वहां एक श्रावक से अचित्त पानी मांग लिया। उसने गर्म गर्म पानी का लोटा दे दिया और बिना माथे पर सलवट लाए वे उस पानी को थोड़ा हिलाकर पीने लायक बनाकर पी गए। उनकी साग सब्जी में नमक मिर्च ज्यादा डाल दिया तो भी उन्होंने इस बात का गिला नहीं किया। गुरुदेव श्री जवाहर लाल जी म. उनकी चर्या से इतने प्रभावित हुए कि वहीं चातुर्मास उठते ही मार्गशीर्ष वदी दूज को उन्हें दीक्षा दे दी। उन्होंने अपने जीवन में जिन-2 ऊंचाइयों को छुआ था, उनका वर्णन करना किसी के वश की बात नहीं है। सेवा स्वाध्याय उनका लक्ष्य था। वे छोटों की श्रद्धा के आधार थे, बड़े-2 संतों के सलाहकार थे। संवत् 1992 (सन् 1935) में वे गणावच्छेक बने। संवत् 2005 (सन् 1948) में मूनक में 11 दिन का संथारा कर देवलोक में गए। उस समय व्याख्यान वाचस्पति गुरुदेव श्री मदन लाल जी म., श्री योगिराज जी म. आदि 22 संत विराजमान थे। उस साल तपस्वी जी म. ने उनके संथारे की सारी जिम्मेदारी संभाली थी। ऐसे कल्याणकारी महापुरुष के चरणों में

जो परम आनन्द मुझे मिला है, उसका स्मरण आज भी तन मन को खुशबू से भर देता है।

सांसारिक मोहमाया से मुक्त होना किसी-2 आत्मा के लिए ऐसे सरल होता है जैसे पेड़ से पक्षी का उड़कर आसमान में पहुंच जाना। किसी-2 के लिए इतना कठिन जैसे दलदल में धंस जाने पर हाथी का बाहर न निकल पाना। स्थानांग सूत्र में चार प्रकार की मक्खियों का वर्णन मिलता है–

1. रेत पर बैठी मक्खी
2. मिस्री पर बैठी मक्खी
3. बलगम में फंसी मक्खी
4. शहद में लिपटी मक्खी।

रेत और मिस्री पर बैठी मक्खियां उड़ने में स्वतंत्र है। पर जब तक बैठी है एक को रस नहीं आता, दूसरी को आता है। कुछ लोग दुःखमय जीवन गुजार रहे हैं मगर अंतरात्मा से आजाद है। दूसरे लोग सुखपूर्वक जीवन व्यतीत कर रहे है मगर उस सुख में उलझे नहीं है, जब मन करता है, उड़ान भर लेते हैं। अंतिम दोनों मक्खियां फंसी रहती है। एक दुःख में दूसरी सुख में। ऐसे ही कुछ मानव दुःख भोगते-2 भी उबर नहीं पाते तथा दूसरे ऐसे इंसान हैं कि सुखों में मशगूल रहते है, वैराग्य के पास भी नहीं फटकते। पंडित श्री शुक्ल चन्द जी म. के वैराग्य का भी बड़ा सुहावना प्रसंग है। हालांकि वे किसी जैन परिवार में पैदा नहीं हुए थे, न उन्होंने बचपन में जैन धर्म का संपर्क पाया, लेकिन वैराग्य चढ़ा तो ऐसा गहरा कि किसी के उतारे नहीं उतरा।

गुड़गांव रिवाड़ी के पास एक गांव है घडौली। वहां एक ब्राह्मण कुल में संवत् 1951 (सन् 1894) भादो सुदी द्वादशी के दिन उनका जन्म हुआ था। पिता बलदेव शर्मा और मां महताब कौर थी। इनके नाम को लेकर भी बड़ा निरालापन है। जन्म नाम भोजराज निकला, कहलाए भवानी शंकर। स्कूल में दाखिला लिया तो उनके मास्टर का नाम भी

यही था तो बदलकर शुक्ल चन्द्र रखा। ये कमाल की बात है कि उस जमाने में भी गांव में अच्छी पढ़ाई होती थी। उस गांव के स्कूल में आसपास के गांवों के बच्चे भी पढ़ने आते थे। नाहड़ गांव के एक लड़के ब्रह्मदत्त से दोस्ती हुई। दोनों ब्राह्मण कुल के थे। जब शुक्ल चन्द्र की पढ़ाई पूरी हुई तो निकटवर्ती गांव हुडिया के ब्राह्मण कुल की एक कन्या से उनकी सगाई तय हो गई। संवत् 1971 (सन् 1914) की बात है कि ये अपने मित्र ब्रह्मदत्त से मिलने नाहड़ में गए। जब मित्र की मां को प्रणाम किया तो वह कुछ भावुक हो उठी और उसकी आंखें भर आई। शुक्ल चन्द्र जी बोले, माता जी, क्या बात आपकी आंखों में आसूं क्यों आ गए। बात को बहुत टालने की कोशिश की लेकिन शुक्ल चन्द्र जी तो माने ही नहीं। आखिर उसने बता ही दिया कि बेटा, जिस लड़की से तेरी सगाई हुई थी, उसकी सगाई पहले मेरे बेटे से हुई थी। पर बाद में ब्रह्मदत्त के पिता जी गुजर गये हमारे हालात कमजोर हो गए तो उन्होंने रिश्ता छोड़ दिया। तुझे देखकर वैसे ही मन भर गया। मुझे बहुत खुशी है बेटा, तेरी और बहू की जोड़ी खूब फले-फूले। मेरे मन में न उनसे कोई नाराजगी है, न तेरे रिश्ते का दुःख है। बस, यों ही पुरानी यादों ने दिल को कच्चा कर दिया। बेटा, मेरी बात का बुरा मत मानना।' उस औरत के आंसू तो रुक गए लेकिन शुक्ल चन्द्र जी के मन में विचारों का मंथन प्रारंभ हो गया। उसे लगा कि जिसका पहला नाता बना, उसे ही यह मौका मिलना चाहिए। यदि यह रिश्ता होगा तो मेरे दोस्त के साथ ही होगा वर्ना मेरे साथ तो नहीं होगा। सबको अपना हक मिलना चाहिए। मैं इस अन्याय की परंपरा में हिस्सेदार नहीं बनूंगा। ऐसा भी कहीं-2 होता है, कभी कभार ही होता है।

एक बार ऐसा हुआ कि कलकत्ता के एक परिवहन कर्मचारी ने लाटरी का एक टिकट खरीद लिया और जेब में रख लिया। बाद में इसके बारे में भूल गया। पैण्ट धोबी को धोने के लिए दे दी और ऐसा एक बार नहीं कई बार हुआ। टिकट का तो हुलिया ही खराब हो गया। कुछ महीने बाद लाटरी का परिणाम आया। उसने अपनी डायरी में

लिखे नंबर को देखा तो पहले ईनाम का नंबर निकला। लेकिन टिकट तो नहीं मिली। दिमाग पर जोर लगाकर ध्यान में आया कि पैण्ट की जेब में देख। वहां तो बुचा-मुड़ा-कोरा कागज सा मिला। उस कर्मचारी ने अपना दावा कम्पनी के सामने पेश किया। 16 महीनों की जद्दोजहद और विभिन्न परीक्षणों के बाद तय हुआ कि उसकी टिकट असली है और उसे पहला ईनाम मिल गया।

इसी तरह शुक्ल चन्द्र जी ने ब्रह्मदत्त की मंगेतर, ब्रह्मदत्त को ही मिले, इस इरादे से उनके गांव में जाकर लड़की वालों से कह दिया कि मैं शादी नहीं करवाऊंगा और रिश्ता तोड़ दिया। घर वालों को भी साफ-2 कह दिया। वे क्या कर सकते थे। श्री शुक्ल चन्द्र जी के जीवन का यह Turning Point था। लेकिन अभी भी वैराग्य भावना का उदय नहीं हुआ था। परिस्थितियां बन रही थी। कुछ दिनों के बाद वे अपने चाचा रामदास जी के साथ अमृतसर जाने लगे। वहां काम धंधे के सिलसिले में जाना होता था। वहीं चौरस्ती अटारी में विराजमान आचार्य श्री सोहन लाल जी म. के दर्शन और प्रवचनों का लाभ मिला। उनके प्रवचनों का मन पर सीधा असर हुआ। उन्हें लगने लगा कि हम लोग महत्त्वहीन चीजों को कितना महत्त्व दे रहे हैं। धन, संपत्ति, पुत्र-कलत्र को सर्वस्व मान बैठे हैं। जहाँ से धन की प्राप्ति हो वही साधन, वही ठिकाना हमें अच्छा लगता है। बाकी सबको दर किनार कर देते हैं, ये मानव जाति का दुर्भाग्य है।

'जर को ही जिंदगी का सहारा समझ लिया।
किश्ती ने भंवर को ही किनारा समझ लिया।
रोटी के गिर्द घूमकर कपड़ों में लिपट कर।
यों दिन गुजारना ही गुजारा समझ लिया।
रावण की तरह तूने ओ अक्ल के पहाड़।
मायापति से माया को है प्यारा समझ लिया।

डण्डे की मार से तो समझता है जानवर।
इंसान वो है जिसने इशारा समझ लिया।'

एक बार कबीर साहब काशी जा रहे थे। उन्हें प्यास लगी। एक कूएं पर पानी पीने रुक गए। वहां दो स्त्रियां पानी भरती हुई बात कर रही थी। एक औरत दूसरी औरत से कह रही थी 'मेरा भाग्य कितना अच्छा है कि मुझे ऐसा पति मिला है जो मेरी किसी बात को नहीं टालता। जो मैं कहती हूं, लाकर दे देता है। देख, मेरे कहने की देर थी कि हीरे जड़ी नथनी लाकर दे दी।' कबीर जी बात सुनकर हंसने लगे। उस औरत ने पूछा 'आप क्यों हँस रहे हैं?' कबीर ने कहा 'जिसने तुझे नथनी दी, उसके तू गीत गा रही है जिस प्रभु ने तुझे नाक दी उसको तू भूल गई।'

दरअसल सांसारिक प्राणियों की दृष्टि सीमित होती है। वे बहुमूल्य वस्तु को भुला देते हैं और बेकार की चीजों को ज्यादा अहमियत दे देते हैं। युवा शुक्ल चन्द्र जी ने आत्म कल्याण के उत्तमोत्तम पथ को अपनाया। 22 साल की भरी जवानी में उन्होंने दीक्षा ली और आचार्य श्री कांशीराम जी म. के निकटतम शिष्य बने। पंजाब में उन्होंने बड़े महत्त्वपूर्ण कार्य किए थे। वाचस्पति गुरुदेव के साथ उन्होंने कंधे से कंधा मिलाया और लाहौर बिरादरी का क्लेश शांत किया। उनकी एक खासियत उस जमाने में मानी गई और बाद में भी मानी जाती रही है कि उन्होंने जैन रामायण और महाभारत को संगीत में पिरोया था। वे जानते थे कि संगीत के द्वारा धर्म प्रभावना विशेष रूप से की जा सकती है। संगीत एक कला ही नहीं, जादू भी है। संगीत मन को वश में करने वाला दैवीय वरदान है। वे स्वयं संगीत सुनाते भी थे और काव्य का निर्माण भी करते थे। संगीत के विषय में इतनी किंवदन्तियां[1] प्रचलित हैं कि आम आदमी दांतों तले अंगुलियां दबा लेता है। एक प्रसंग संगीत प्रेमियों में अक्सर सुनाया जाता है। अकबर बादशाह की राजसभा में

1 लोक मान्यताएं

संगीत की प्रतियोगिता थी। उसमें प्रमुख मुकाबला तानसेन और बैजू बावरा में था। वह दरबार आगरा के पास वन में आयोजित हुआ था। सबसे पहले तानसेन ने टोड़ी राग छेड़ा और उसकी स्वर लहरियों का परिणाम था कि मृगों का झुण्ड दरबार में आकर खड़ा हो गया। तानसेन ने अपने गले की माला उस झुण्ड में एक हिरण के गले में डालकर संगीत को विश्राम दे दिया। सभी मृग वापस वन में चले गए। फिर बैजू बावरा अपना तानपुरा उठाकर 'गृहरजनी टोडी' राग गाने लगा। उसके शब्द प्रकंपनों से माला पहनने वाला मृग फिर सभा में हाजिर हो गया। ऐसी मानी गई है संगीत की शक्ति। एक बार 'बैजू बावरे' के गुरु हरिदास जी ने अपने शिष्य को आज्ञा दी कि मध्यप्रदेश की रियासत चन्देरी गूना के कछवाह राजा राजसिंह की अनिद्रा का इलाज कर। उसने 'रागपूरिया' गाकर उसकी बीमारी ठीक कर दी थी। संगीत का उपयोग मनोरंजन के अलावा अन्य कार्यों में भी किया जाता है। 'दीपक' राग से बुझे दीपक जलाए जाते थे। 'श्रीराग' से क्षयरोग का उपचार किया जाता था। 'भैरवी राग' से प्रजा की शांति कायम की जाती थी। 'शकरा राग' से युद्ध में सैनिकों में शौर्य भरा जाता था। वर्षा ऋतु में गांव-2 में 'मल्हार राग' गाने का रिवाज रहा है। जिसके परिणामस्वरूप कठोर दिलों में भी प्रेम का झरना बहने लगता था। पहले युग में शास्त्रीय संगीत का आलम था। आजकल केवल सस्ता संगीत हावी हो गया है। श्री शुक्ल चंद जी म. ने अपने उच्च आदर्शों को संगीत में पिरोया था। वे अपने साथी संतों को भी बहुत प्रोत्साहन देते थे। उन्हें तब बड़ी खुशी होती थी जब कोई नया संत उभरता था। खुद भी वे संगीत के फन में माहिर थे तो औरों के संगीत को भी दाद देते थे। इसी कारण नई प्रतिभाओं को आगे आने का मौका मिलता था। पंडित श्री शुक्ल चन्द्र जी म. का अंतिम समय जालंधर में व्यतीत हुआ था। जालंधर की संगीत से जुड़ी घटना याद आ रही है, जो आपको सुनाऊं—

जालंधर में हर साल हरिवल्लभ संगीत सम्मेलन होता है। पहले समय में सम्मेलन के प्रबंधक श्री तोलाराम जी थे। उन्होंने एक बार देश भर के चोटी के संगीताचार्य आमंत्रित किए थे। पं. विष्णु दिगंबर पलुस्कर भी पधारे थे। जब वे मंच पर पहुंचे तो एक मुस्लिम लड़का गा रहा था और श्रोता उसके गायन का आनन्द ले रहे थे। लेकिन पंडित जी के आते ही सभी श्रोता सम्मान से खड़े हो गए। वह युवा गायक जो कि अमृतसर रबाबी खानदान का गरीब सा लड़का था, वह भी खड़ा हो गया। पंडित जी बैठ गए तो श्रोता भी बैठ गए। वह मुसलमान लड़का भी बैठकर अपने छोड़े हुए गाने को फिर सुनाने लगा। पर समां नहीं बंध पाया क्योंकि श्रोता पंडित जी को सुनने को बेचैन थे। सीटियां बजाने लगे। उसने गाना बंद किया और पंडित जी स्टेज से गाने लगे। उन्हें तो संगीत सिद्ध था। राग-रागिनियां उनके आगे हाथ जोड़े खड़ी रहती थी। लेकिन उन्हें लगा कि आज सारी सिद्धियां गायब हो गई हैं। उनके हिसाब से रंग नहीं जम रहा था। मगर जनता तो हर ताल पर झूम रही थी। सभा विसर्जित होने पर पंडित जी डेरे पर आए। खाना तैयार हो चुका था। पर उन्होंने खाने से मना कर दिया। रोने को मन कर रहा था। उन्होंने श्री तोलाराम जी को बुलवाया और अपने मन की ग्लानि बताई कि आज तो बड़ा भारी अपमान हुआ है। तोलाराम जी बोले, पंडिज जी, ऐसी कोई बात नहीं है। जिन सूक्ष्म भावों की बात आप कह रहे हैं, वह तो लोगों की समझ से परे है। आज आपका संगीत प्रजा में अच्छा जमा है। लेकिन पंडित जी का मन नहीं माना। उन्होंने कहा, उस मुसलमान गायक को बुलवाओ। वह आ गया। पंडित जी ने कहा, 'बेटा, हमने आपको विश्राम और भोजन के समय कष्ट इसलिए दिया है कि आपसे कुछ सुनना चाहते हैं।' वह युवक चकित सा हो गया। पंडित जी ने फिर कहा कि बेटा, हैरान न हो, हम आपका मजाक नहीं उड़ाना चाहते। बड़े प्रेम और मोहब्बत से कुछ सुनना चाहते हैं। उनकी बात का समर्थन श्री तोलाराम जी ने भी किया, 'पंडित जी आपको अपमानित नहीं, सम्मानित करना चाहते हैं। फिर उस लड़के ने 'राग

सोहनी' गाया। बहुत अच्छा गाया। पडित जी ने खूब दाद दी। वह गद्‌गद हो गया और पंडित जी को प्रणाम करके चला गया। सब जगह इस घटना की खबर फैल गई। लोगों में उस गायक की इज्जत और बढ़ गई। अगले सैशन पर पंडित जी ने जब गाया तो खूब रंग जमा। लोग भी खूब झूमे। पंडित जी का मन भी प्रसन्न हुआ। इस प्रकार एक बालक को प्रोत्साहित करने से पंडित जी का रुतबा बढ़ा ही, घटा नहीं।

हम चाहे पूज्य श्री बनवारी लाल जी म. की चर्चा करें, चाहे श्री शुक्ल चंद जी म. की। उन महापुरुषों का वैराग्य त्याग की ओर अग्रसर हुआ था। केवल बातों से वैराग्य की चर्चा उन्हें पसंद नहीं थी, जीवन के कण-2 में उतारकर ही उन्होंने संयम, त्याग, वैराग्य को मूर्तिमान् बनाया था। आम आदमी जिस सच्चाई को अपनाना तो दूर, समझ भी नहीं सकता, उस सच्चाई के वे अवतार पुरुष थे। उनकी सोच, उनकी बोली, उनका व्यवहार सब कुछ अद्‌भुत होता था। तभी तो महापुरुषों की महानता कायम रहती है।

एक बार भगवान् बुद्ध काशी के एक संपन्न किसान के घर जाकर भिक्षा मांगने लगे। किसान ने भिक्षा पात्र लिए संन्यासी को देखा तो व्यंग्य भाव से बोला 'हम लोग बड़े परिश्रम से खेत-2 जोतकर-बोकर अपनी फसल तैयार करते हैं, तभी उदर पूर्ति होती है। आप बिना खेती किए ही भोजन पाना चाहते हैं, खेती करो और फिर खाना खाओ।'

बुद्ध ने शांत स्वर में उत्तर दिया, भद्र मैं भी किसान हूं। किसान उस संन्यासी के मुंह से ये बात सुनकर अचरज से भर गया। पूछने लगा, 'आप खेती करते हो?' तथागत ने कहा, 'हां वत्स, मैं आत्मा की खेती करता हूं। ज्ञान के हल से श्रद्धा के बीज बोता हूं। तपस्या के जल से सींचता हूं। विनय मेरे हल की नोक है, विचारशीलता फाली है और मन उसका दंड है। सतत प्रयास मुझे उस ओर ले जा रहा है जहां न दुःख है, न संताप है। मेरी इस खेती से अमरता की फसल लहलहाती है वत्स!' किसान का समाधान हो गया। हर महापुरुष इस तरह की

खेती करके अपने जीवन में सुख-शांति की फसल उगाता है। श्रमण भगवान् महावीर ने ऐसे साधकों को ही कहा कि वे प्रत्येक कदम पर संभलकर चलते हैं, वे अपने प्रत्येक पल को सार्थक बनाकर चलते हैं। अपनी प्रत्येक क्रिया को जागरूक नेत्रों से निहारते रहते हैं।

महात्मा बुद्ध के जीवन की एक घटना से ये बात समझ में आती है—वे अपने शिष्य आनन्द के साथ बात करते हुए एक गांव में चले। आनन्द ने देखा कि तथागत ने बिना किसी मक्खी आदि के अपने हाथ को सिर पर किया और किसी चीज को उड़ाया जबकि उड़ाने लायक वहां कुछ भी नहीं था। आनन्द ने कारण पूछा तो बुद्ध ने फरमाया 'जब मैं तुमसे बातचीत में मस्त था तब मेरे माथे पर एक मक्खी आकर बैठ गई थी और मैंने बिना होश के उसे उड़ा दिया था। लेकिन वह तो पाप हो गया। हालांकि न मक्खी मरी थी, उसे न चोट आई थी, लेकिन बेहोशी में किया गया कृत्य पाप है। मेरी पूरी चेतना, मेरी आत्मा तब मौजूद नहीं थी। मुझे ऐसा लगा कि जैसे यह कृत्य नींद में हो गया है। बेहोशी (नींद) में जीने वाला संसारी है और जागकर (होशपूर्वक) जीने वाला संन्यासी। मैं जिस डगर पर जा रहा हूं वहां होश का आना आवश्यक है। मैंने इस क्रिया को अपनी पूर्ण चेतना के साथ किया है अतः यह होशपूर्वक हुई, यही धर्म है।'

जैन धर्म इसी को यतना, अप्रमाद कहता है। आगमकारों ने इसीलिए फरमाया है कि हे साधक, हर कदम पर होश रखकर चल, कोई भी कार्य फंसने के लिए जाल बन सकता है।

'संभलकर चलो इस गुलिस्तान में कहीं खारों में ख्वार होने लगो,
है मक्कार अय्यार दुनिया सभी कहीं मुफ़्त में यार होने लगो।'

जो इस अप्रमाद के अभ्यासी बनेंगे, उनका यहां भी कल्याण होगा, आगे भी कल्याण होगा।

11. अहिंसा की उपलब्धियां

साहू गोयम पण्णा ते छिन्नो मे संसओ इमो।
नमो ते संसयातीत सव्व सुत्त महोदही ॥

पूज्य गुरुदेवों की कृपा से जो कुछ सीखा है कुछ देर आपके समक्ष रखेंगे। भव्य जीव धर्म आराधन करें, रत्नत्रय को उज्ज्वल करें, यही हमारी कोटिशः मंगलकामनाएं हैं।

तीर्थंकर भगवंतों की वाणी–

'सव्वे जीवा वि इच्छन्ति जीविउं न मरिज्जिउं,
तम्हा पाणिवहं घोरं गिग्गंथा वज्जयंति णं' ॥[1]

सभी जीव जीना चाहते हैं, मरना कोई नहीं चाहता, इस विश्वव्यापी चिन्तन के आधार पर श्रमण निर्ग्रन्थ धर्म को मानने वाले मानव कभी-भी जीव-हिंसा नहीं करते।

दया और अहिंसा संसार के सभी धर्मों, धर्म प्रवर्तकों को मान्य हैं, हां जैन धर्म इस पर अधिक जोर देता है, अधिक गहराई में जाता है। बाइबिल ईसाइयों का धर्मग्रंथ है। उसमें Ten commandments हैं। उनमें से एक है Thou shalt not kill अर्थात् तुम किसी प्राणी का वध मत करो। शायद लोग समझते होंगे कि मुसलमानों में अंहिसा को मान्यता नहीं है, लेकिन नहीं, वहां भी रहम के लिए बड़ा ऊंचा दर्जा दिया गया है। रहम करने वाला रहीम है, रहमान है। परमात्मा वही है जो रहम करे, रहम की शिक्षा दे। हिन्दू धर्म में यज्ञों में हिंसा की मान्यता चलती है, परंतु गौर करके देखोगे तो यज्ञ हिंसा को बढ़ावा नहीं देते, बल्कि हिंसा को रोकते हैं। यज्ञ के पर्यायवाची शब्दों में एक भी ऐसा शब्द नहीं है जो हिंसा की पुष्टि करता हो, बल्कि एक शब्द

---

1 दशवैकालिक 6 अध्ययन 11 गाथा

है अध्वर। 'अध्वर' शब्द का अर्थ है जहां हिंसा न हो।' हिंदू धर्म की व्याख्या यदि निर्वचन पद्धति से करे तो अर्थ निकलता है **'हिंसया दुनोति चित्तं यस्य'** हिंसा से जिसका चित्त दुःखी हो जाए—वह हिंदू होता है।

जैन धर्म प्रारंभ से ही अहिंसा का पर्यायवाची बनकर रहा है। चाहे यज्ञ की हिंसा हो, चाहे खानपान की, चाहे कारोबार की हो, चाहे मनोरंजन की। जैनों ने हिंसा का सदा ही विरोध किया है। बौद्धों ने भी हिंसा से दूरी बनाए रखी है। और विश्व में जहां भी गए हैं, वहीं अहिंसा को महिमा मंडित किया है। सारा भक्तिमार्गी आंदोलन चाहे वह आलवार संतों ने चलाया हो, चाहे नानक, कबीर, दादू आदि ने चलाया हो, सब अहिंसा पर आधारित रहा है। सिक्खों में हिंसा के प्रति झुकाव ऐतिहासिक कारणों से हुआ था। मूलतः ये मजहब पूर्णतः हिंसा विरोधी रहा है। सूफीवाद भी अधिकांश रूप से अहिंसा को महत्त्व देता रहा है। गांधी ने अहिंसा को राजनैतिक हथियार के रूप में प्रयोग करके इसे नया ही रूप दिया है। उत्तराध्ययन में वर्णन है—कांपिल्य नगर में संजय नामक राजा था। सेना बल उसका विशाल था तथा उसे शिकार खेलने का शौक था। एक बार वह राजा अपनी विशाल सेना के साथ 'केसर' उद्यान में शिकार खेलने गया। उसी केसर उद्यान में एक महान् तपस्वी गर्दभाली मुनि अंगूरों की लताओं के मण्डप में ध्यान कर रहे थे। शिकार के शौकीन राजा ने मुनि को तो देखा नहीं, बस हिरणों पर तीर बरसाने शुरू कर दिए। जब राजा कुछ निकट आया तो उसने पहले तो मरे हुए तथा घायल हिरणों को देखा तथा साथ ही मुनि को भी देखा तो एक ख्याल आया। यदि कोई बाण मुनि के लग जाता तो क्या होता? उसे शिकार के लिए गए राजा दशरथ की कहानी याद आ गई कि किस तरह उसने हाथी के भ्रम में श्रवण भक्त को तीर मार दिया था और उसके माता-पिता का शाप झेलना पड़ा था। राजा भयभीत हो गया और मुनि से माफी मांगने लगा। मुनि तो ध्यान में खड़े थे इसलिए वे राजा से नहीं बोले, तो वह और अधिक सहम गया, विनति करने लगा—हे मुनिराज, मैं संजय राजा हूं, अपनी भूल के लिए

क्षमा प्रार्थना करता हूं। मुनि ने ध्यान खोला। बोले– **'अभओ पत्थिवा तुब्भं अभयदाया भवाहि य'।**

'मैं अभयदान देता तुझको, तुम भी निर्भयता दान करो,
हिंसा में फंसकर ऐ राजन् मत जीवों का नुकसान करो।'

गर्दभाली मुनि के वचनामृत से संजय राजा का मन इतना तब्दील हुआ कि उसने शिकार ही नहीं, पूरा संसार परिवार छोड़ दिया। संयम स्वीकार किया और केवल ज्ञान को हासिल किया।

यह संसार प्रतिपल बदल रहा है, जीवन भी परिवर्तनशील है। लेकिन असली परिवर्तन तो हिंसक चित्त को अहिंसक चित्त बना देने में है। हिंसक भाषा और आचरण को अहिंसक भाषा और आचरण में बदल लेना असली Revolution है। हमारे तीर्थकर भगवंतों ने मानव जाति को अहिंसा के मार्ग पर चलाकर इसके उत्थान की नींव धर दी थी। प्रभु अरिष्टनेमि ने मांसाहार की ओर बढ़ रही राज्य शक्ति को सात्त्विक शुद्ध शाकाहार की ओर उन्मुख किया। भगवान् पार्श्वनाथ ने दीक्षा से पूर्व ही हिंसक यज्ञों को चुनौती प्रदान की। पार्श्वनाथ प्रभु जब युवावस्था में थे। उस समय कमठ तपस्वी पंचाग्नि तप कर रहा था। बनारस की अधिकांश जनता उसके तप से प्रभावित थी क्योंकि गर्मी की तपती दोपहरी में चारों ओर जलती हुई यज्ञाग्नि के बीच बैठकर जब वह ध्यानस्थ खड़ा हो जाता तो दुनिया अश-2 करने लगती थी। अधिकतर नगर निवासी उसे नमस्कार करने आ चुके थे। लेकिन अभी तक पार्श्व कुमार नहीं आए थे। कमठ को उसकी ही प्रतीक्षा थी। आखिर एक दिन पार्श्वकुमार उधर आ ही गए। आगे बढ़कर कुछ अपनी श्रद्धा भावना व्यक्त करते उससे पहले तो उन्हें यह लगने लगा कि यज्ञ की अग्नि में न केवल लकड़ियां ही जल रही हैं अपितु पंचेन्द्रिय प्राणी भी जल रहे हैं। उन प्राणियों की दया भावना से प्रेरित हो पार्श्वकुमार अतिशीघ्र आगे बढ़े और कहने लगे– हे तपस्वी, कृपा करके इस आग को बुझा दो क्योंकि इन लक्कड़ों में सर्पयुगल जलने के

करीब है। कमठ को तो ऐसे लगा मानो उसके मुकुट पर किसी ने लात मार दी हो। अधिक तैश में आ गया और बोला–

ओ राजा के बेटे तू संतों पर धौंस जमाता है।
तेरे कच्चे यौवन को लख तरस भतेरा आता है।
अब भी ये बकवास छोड़ दे मुझसे भिड़ना ठीक नहीं।
तुझे पता क्या शाप ऋषि का सात जनम तक जाता है।

राजकुमार पार्श्व ने कहा, ऋषि जी, मैं आपसे लड़ने-टकराने नहीं आया पर एक पंचेंद्रिय जोड़े की हत्या न हो, बस यही निवेदन कर रहा हूं।

ऋषिवर, तुझसे भिड़ने का मनसूबा मेरा नहीं रहा,
सर्प युगल की रक्षा हित इक गुप्त रहस्य है प्रकट कहा।
शाप और अभिशाप की भाषा मेरी समझ से बाहर है,
अब भी सहने को हाजिर हूं पूर्वभवों में बहुत सहा ॥

कमठ तपस्वी ने इस बात को Prestige Point बना लिया और चुनौती की भाषा में बोल उठा–

अगर सत्य हो बात तुम्हारी यहीं भस्म हो जाऊंगा।
झूठ अगर पाई तो गर्दन तेरी भी कटवाऊंगा।
अदना सा बच्चा है फिर भी आसमान सिर उठा लिया।
फाड़ो इस लक्कड़ को सारी जाहिर बात कराऊंगा ॥
सर्प सर्पिणी अधझुलसे निकले तो सब हैरान हुए।
पार्श्व कुमार उभय[1] की रक्षा में उद्यत हर आन हुए,
शेष प्रजा तो कमठ तपस्वी का करती उपहास रही,
किंतु पार्श्व के मुख से निसृत नमोकार के गान हुए ॥
आर्त रौद्र को दूर किया उस सर्प युगल को शांत किया।
भीषण दाह जन्य पीड़ा से दोनों का प्राणान्त हुआ।

---

1 दोनों की

कमठ प्रताड़ित अपमानित हो खूब बरसता है प्रभु पर।
ज्ञान सूर्य ओझल था उसका व्याप्त क्रोध का ध्वान्त हुआ।
पार्श्व कुमार ने प्रेम भाव से उसकी हर गाली झेली।
क्षमावीर ने सहनशीलता की ऐसी होली खेली।
भूल गए उसकी सब गर्मी, मन को सिन्धु कर डाला
जन्म-2 की सहनशीलता आज बन गई अलबेली।
सब जनता ने बुरी तरह से तापस को दुत्कारा था
भाग गया जंगल में सबसे आंख बचा बेचारा था।
बाल तपस्या के बल पर वह मेघ माली था देव बना।
जल धारा बरसाकर प्रभु पर अपना क्रोध उतारा था ॥

भगवान् पार्श्वनाथ तो अहिंसा के अवतार थे, वे किसी प्राणी का अहित कैसे चाह सकते थे। **'सव्वे पाणा पियाउआ अप्पियवहा पिय जीविणो, सव्वेसिं जीवियं पियं'** सभी प्राणी अपनी जिंदगी से प्यार करते हैं तथा मृत्यु से बचते हैं। इसलिए उन्होंने हिंसा, पशुबलि, मानवबलि आदि कुप्रथाओं को बंद करवाया। प्रभु महावीर ने नारी जाति पर होने वाले अत्याचार रुकवाए, शूद्रों के ऊपर अमानवीय हिंसा को भी भगवान् ने बंद करवाया। मांसाहार और मद्यपान के राक्षसी खानपान से मानवता को बचाया। उनकी यही अहिंसा-धारा युगों-युगों को प्रभावित करती हुई आज भी जन जीवन को निर्मलता-पावनता का संदेश दे रही है। भगवान् महावीर के शासन में हजारों साधु-साध्वियों ने अपने-2 युग में अहिंसा का शंखनाद गुंजाया है।

आज जहां कहीं भी, जो कोई भी अहिंसा का प्रचार-प्रसार कर रहा है, वह भगवान् महावीर के पैगाम को ही आगे बढ़ा रहा है। उस व्यक्ति के नाम के आगे-पीछे जैन विशेषण हो या नहीं, मैं उसे जैन ही मानता हूं। भगवान् महावीर का अनुयायी मानता हूं। और उसका सम्मान करता हूं।

हमारे विद्वान् शिष्य श्री राकेश मुनि जी में दया, अहिंसा के फैलाव की बड़ी तड़प है। उन्होंने ही मुझे एक दृष्टांत लिखकर दिया है। बड़ा मार्मिक दृष्टान्त है। सरदार हरनाम सिंह जी बाहिए के इलाके में बड़े जमींदार थे। जैजों और ऊना की तरफ बाही नदी बहती है, इसलिए वो इलाका बाहिए का इलाका कहलाता है। इस जमींदार की नाभा पटियाला आदि राज घरानों से रिश्तेदारी थी। शिकार, शराब, मांस और मुजरों का बेहद रसिया था। निशानची इतना पक्का था कि एक बार बन्दूक के एक ही वार से 70 तिलयर पक्षी मार गिराए थे। घर में ही मुर्गी खाना खोल रखा था। हालत ये थी कि अण्डों को आलू की तरह तथा चूजों को प्याज की तरह खा जाता था। धार्मिक दृष्टि से देखें तो सारा घर कत्ल खाना लगता था। खून और मांस के लोथड़े भी रसोई में बिखरे रहते। कई जगह मारे गए पशुओं की लाश और खाल लटकी रहती। कभी-2 मांस भूनने और कबाब तलने की दुर्गंध सारे घर में फैल जाती थी। शराब खाना भी घर में ही था। पीना भी और पिलाना भी, बस शौक में शुमार था। उनके यहां एक और दरिंदाना रिवाज था कि यदि घर में लड़की का जन्म हो जाए तो पैदा होते ही मार देते थे। मान्यता ये थी कि लड़की की शादी के बाद दामाद बनाना पड़ेगा और उसके आगे झुकना पड़ेगा।

एक बार सरदार हरनाम सिंह जी शिकार करके, मारे गए पशुओं को लादकर ऊंट पर आ रहे थे। रास्ते में देव समाज के एक प्रचारक साधु देवत्व सिंह जी मिल गए। देव समाज, आर्य समाज, प्रार्थना समाज, ब्रह्म समाज—ये सुधारवादी आंदोलनों की उपज रही है। आर्य समाज का जन्म गुजरात में हुआ पर प्रचार-प्रसार अधिकतर उत्तर भारत में हुआ। प्रार्थना समाज अधिकतर पश्चिमी भारत—बम्बई, गुजरात में फला फूला, ब्रह्म समाज पूर्वी भारत—बंगाल के इलाके में पनपा। जबकि देव समाज का प्रभाव क्षेत्र पंजाब के छोटे से हिस्से में रहा। भटिण्डा, इबावाली, मोगा, अंबाला आदि शहरों में अब भी देव समाज की संस्थाएं काम रह रही हैं। तो खैर, जब साधु श्री देवत्व सिंह जी ने सरदार जी का

ऐसा घिनौना रूप देखा तो उनकी आत्मा कराह उठी। और सरदार जी को कहने लगे, 'यदि किसी को राजगद्दी मिल जाए और वह अपनी Duty छोड़कर झाड़ू से पाखानों की सफाई करता फिरे तो उसे आप क्या कहेंगे?' सरदार हरनाम सिंह बोले 'उसे महामूर्ख और मन्दभागी कहा जाएगा।'

साधु जी ने सीधे तौर पर प्रहार करते हुए कहा 'आपको भी बाहिए की सरदारी मिली थी पर कसाई का काम कर रहे हो। बस, तुमने झाड़ू नहीं, बंदूक पकड़ी है। सफाईकर्मी की झाड़ू से तो फिर भी सफाई होती है मगर बंदूक से निर्दोष पशु-पक्षियों का सफाया होता है। राजगद्दी के मालिक होकर भी आप सफाईकर्मी से भी घटिया हालत में जा पहुंचे हो।' साधु देवत्व सिंह जी के ये शब्द सरदार जी के दिल पर गोली की तरह जा लगे। तुरंत तीन चीजों का नियम ले लिया। शराब, मांस और शिकार। शराब की बोतलें पक्की दीवारों से मार-2 कर फोड़ दीं। शराब के मटके विदा कर दिए। शराब खाने को बदलकर 'साधना स्थान' अर्थात् सत्संग भवन बना दिया। शराबी दोस्तों और महाराजाओं की महफिलें छोड़ दीं। रिश्वत और अन्याय से कमाया हुआ पैसा वापस कर दिया।

प्राणि मात्र के प्रति इतने दयावान् हो गए कि जंगलों में जाकर पशु-पक्षियों को दाना डालते, उन्हें पानी पिलाते। जीवन का सारा स्वरूप ही बदल गया। भक्ति, प्रार्थना, प्रभु कीर्तन, आत्म-संशोधन में पल-2 बीतने लगा। ऐसे धर्म भाव से भरपूर मानव की भावना क्या हो सकती है। कविता के स्वरों में सुनिए–

'उस पार चलो तुम प्राण जहां विश्वास सत्य में हो ढलता।
उस पार चलो मेरे अंतर जीवन न जहां कोई छलता।

हो वर्ण विभेद रहित जीवन पलकों में करुणा पलती हो।
हो मरण जहां जीवनदायी, स्वार्थों की दुनिया जलती हो।
उस पार चलो सम्मान मेरे निष्काम जहां जीवन बनता ॥1॥

मरघट भयमुक्त चकोर जहां प्रियतम के लिए मचलता हो।
कलियों में संचित सौरभ को ललचाया भ्रमर न हरता हो।
समता, ममता और क्षमता में जीवन अविराम जहां पलता ॥2॥

युग के प्रतिवेध जहां न उगे मन फंसे न रूढ़ि विवादों में।
अन्तस का अमृत घट न सके छल बल-धन कपट विषादों में।
हो धर्म कर्म श्रद्धा निष्ठा सुविचार जहां पर हो फलता ॥3॥

लिहाजा, सरदार जी अपने अभियान में आगे से आगे बढ़ते रहे। लड़कियों के लिए कई जगह स्कूल खुलवाए। एक बार उन्हें याद आया कि मैंने एक बार सरदारी के नशे में नौकर को पीटा था। गांव में जाकर उससे माफी मांगी। नौकर के हाथ में लाठी दी और कहा—जितनी मैंने मारी थी, उससे भी ज्यादा मुझे मार।

जीवन के अंतिम पड़ाव पर घर बार छोड़कर विरक्त होकर शांति पूर्वक प्राण छोड़े थे। ये है अहिंसा का जादू।

अहिंसा के बिना सृष्टि का संचालन संभव नहीं है। जिन पशुओं की खुराक मांस है, वे भी हर प्राणी को मारकर नहीं खाते। अपने बाल-बच्चों की, अपनी प्रजाति के प्राणियों की रक्षा वो भी करते हैं। पशु जगत् तो अपनी अज्ञानता के कारण अपनी शारीरिक प्रकृति को बदल नहीं सकता। जिंदगी भर एक ही ढर्रे में जीता है। जबकि मानव मननशील है, वह अपनी प्रकृति को बदल सकता है। लेकिन मानव भोजन के मामले में अपनी शारीरिक प्रकृति को छोड़कर उल्टे विकृति की ओर बढ़ा है। प्रकृति के नियमों के मुताबिक वह शाकाहारी है, उसके दांत, जबाड़े, नाखून, लार, अन्तडियों का सारा System शाकाहार के अनुकूल है, और मांसाहार के प्रतिकूल है। फिर भी विश्व की अधिकतर आबादी मांसाहारी रही है। इसके पीछे कुछ भौगोलिक, ऐतिहासिक कारण भी रहे हैं। पहाड़ी, रेगिस्तानी तथा समुद्री इलाकों में गेहूं, चावल आदि धान्यों की उपज नहीं होने से वहां के निवासी मजबूरी में जीवन निर्वाह के लिए मांसाहारी बन गए। फिर सैकड़ों, हजारों वर्षों की परंपरा

बनने से मांसाहार वहां की संस्कृति और धर्म का अंग बन गया। बाद के युग में यदि उन इलाकों में अन्न का उत्पादन होने भी लगा था वे लोग उन जगहों को छोड़कर मैदानी इलाकों में आकर बस गए तो भी उन्होंने अपने खाने की आदतें नहीं बदली। ठीक है, उन्होंने शाकाहारी भोजन को भी अपना लिया, मगर मांसाहार भी नहीं छोड़ा। जिससे उनका मानसिक विकास तो रुका ही रुका, साथ ही साथ उनके शरीरों में नाना प्रकार के रोग और लग गए। सबसे बड़ा नुकसान तो ये हुआ कि मानव मन में जो संवेदनशीलता, कोमलता, पर दुःख कातरता थी, मांसाहार ने उसे लील लिया।

जिन घरों में छोटे-छोटे बच्चों को पशु-पक्षी काटने की जानकारी दी जाती हो, उन घरों में से दया करुणा अलविदा हो जाती है। ऐसे बालक प्रायः बड़े होकर खूंखार और क्रूर बन जाते हैं। आज तो शायद मुसलमान समझते है कि कुर्बानी करना हमारे लिए धार्मिक आवश्यकता है, मगर उनके इतिहास को टटोलें तो उनके यहां भी पशु रक्षा का प्रावधान रहा है।

एक बार पैगम्बर मोहम्मद जंगल में से गुजर रहे थे तभी उन्होंने देखा कि एक शिकारी एक हिरणी को पकड़ कर ले जा रहा है। वह हिरणी मुड़-2 कर पीछे की ओर देख रही थी। उसकी आंखों में आंसू आ रहे थे। उससे चला नहीं जा रहा था। उस हिरणी के रेशे-2 से दया की मांग टपक रही थी। बड़ी करुणामय स्थिति थी। मोहम्मद साहब समझ गए कि यह हिरणी क्यों इतना तड़फ रही है। उसे अपने प्राणों की फिक्र नहीं थी, बल्कि अपने नवजात शिशुओं के जीवन की चिंता थी। वे छोटे-2 बच्चे मां का दूध पिए बिना तड़फ जाएंगे, यही चिंता हिरणी को खाए जा रही थी। पशु जाति में अपनी औलाद के लिए जो ममता होती है उसका वर्णन संस्कृत के एक श्लोक में भी इसी तरह से किया है कि एक हिरणी अपने कातिल से कहती है कि तू मेरे शरीर के किसी भी हिस्से से मांस काट ले मगर मेरे स्तनों को मत काटना

क्योंकि मेरे बच्चे अभी घास खाने नहीं लगे। उन्हें दूध तो इन्हीं स्तनों से पीना होगा।

'आदाय मांस मखिलं स्तन वर्जिताङ्गाद्
मां मुंच वागुरिक यामि कुरु प्रसादम्,
अद्यापि शष्प कवल ग्रहणानभिज्ञाः,
मन्मार्गवीक्षण पराः शिशवो मदीयाः ॥'

लगभग ऐसी ही मनोव्यथा से उस हिरणी को देखकर पैगंबर मोहम्मद साहब का दिल भर आया।

'वो आंख आंख नहीं, वो दिल दिल नहीं,
जिसे किसी मुसीबत ज़दा की मुसीबत नज़र नहीं आती ॥
अगर तेरे दिल में दया ही नहीं, समझ ले तुझे दिल मिला ही नहीं।'

तो लिहाजा, पैगम्बर मोहम्मद उस शिकारी के पास जाकर कहने लगे—मेहरबान, तू इस हिरणी को कुछ देर के लिए छोड़ दे। ये अपने बच्चों को दूध पिलाकर वापस आ जाएगी। शिकारी को ये बात नहीं जंची। जंचने लायक लगी भी नहीं थी। दोनों की बात को शायरी में लिखा है—

'फरमाया रिहा कर है बड़ा रहम का पाया।
इंसान वह नहीं जिसने हैवां को सताया।

देख, दया का आधार सबसे बड़ा है। तू इस हिरणी को कुछ देर के लिए तो कम से कम छोड़ दे। शिकारी ने दलील दी—

कैसे करूं रिहा इसे मुश्किल से पाया,
छोडूं नहीं हर्गिज जो शिकार हाथ आया।

फिर उन दोनों की बात आगे चली–

'हैवान पर अन्देशए-वहशत[1] न जरा कर,
आती है यह बच्चों को अभी दूध पिलाकर।'

शिकारी कहने लगा–आप छोड़ने की कहते हो मगर ये नहीं आई तो मैं आपको पकड़ लूंगा।

'न आई तो मैं पकडूंगा तुझे इसके एवज में,
तेरी ये जिंदगी होगी मेरी इस नोके खंजर में।'

मोहम्मद साहब की आत्मा सच्ची थी और उसकी जिंदगी बचाने की तड़प थी। अतः ये शर्त मंजूर कर ली।

'इस वक्त यही शर्त सही जिसको खुदा दे,
हम जान लगाते हैं तू ईमान लगा दे।'

मोहम्मद साहब के कहने से वह शिकारी मान गया और हिरणी को छोड़ दिया। वह छलांगें मारती हुई भाग गई और आंखों से ओझल हो गई। अब उम्मीद नहीं थी कि वह लौटकर भी आएगी। मगर मोहम्मद साहब को पक्का भरोसा था कि वह आएगी और जरूर आएगी।

'आ गई हिरणी पिला के दूध बच्चे को,
मिसाल मशहूर है आती नहीं कभी आंच सच्चे को।'

उस हिरणी के आते ही शिकारी का दिल ही बदल गया और उसे अहिंसा, दया की ताकत पर यकीन आ गया।

'सौ जां से मौतकिद साहिबे दीदार।
बोला वह कदमे पाक[2] में गिरकर कई बार

---

1 दुष्टता की संभावना
2 पावन चरण

बातिल[1] नहीं रहता जो दिखाते हैं असरे हक[2]
बेशक है खुदा एक रसूल आप हैं बरहक[3]
लो मैं अब मुसलमान हूं मुंह कुफ्र से मोड़ा।
मैं छूट गया कुफ्र से हिरणी को भी छोड़ा।'

पंतजलि ने अपने 'योगसूत्र' में अहिंसा के प्रभाव की चर्चा करते हुए कहा है– **'अहिंसा प्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैर परित्यागः'** जब जीवन में अहिंसा की प्रतिष्ठा गहरी, सच्ची और स्थायी हो जाती है तो वातावरण से वैर का भाव विदा हो जाता है। इस निष्कर्ष को सिद्ध करने के लिए तीर्थंकरों के समवशरण की उपमा दी जाती है। उनके सान्निध्य में शेर और गाय एक घाट पर पानी पीते हैं। प्राणियों का जातिगत वैर विरोध शान्त हो जाता है। सामान्य रूप से शेर यदि गाय को देख ले तो उस पर वार करके उसे खा लेता है लेकिन तीर्थंकरों के समवसरण में वे अपने वैर विरोध को त्याग देते हैं। इसी तरह जो इंसान दूसरे इंसान का धुर दुश्मन होता है, वह भी प्रभु के पास आकर क्षमावान्, सहिष्णु और मित्र बन जाता है। ऋषभदेव के चरणों में आने से पहले 98 भाई लड़ने की तैयारी में थे, उनके पास आते ही द्वेष छोड़ दिया। चण्ड प्रद्योत ने मृगावती महारानी को हथियाने वास्ते कौशाम्बी का घेरा डाल रखा था। उस शहर की ईंट से ईंट बजाने की ठान रखी थी। लेकिन श्रमण भगवान् महावीर की सन्निधि में सारा गुस्सा छोड़ दिया। मृगावती को बहन तथा उसके पुत्र उदायन को अपना भानजा मान लिया। यह सब तभी संभव होता है जब अहिंसा की भावना जीवन के कण-2 में समा जाती है।

ईसा मसीह के जीवन को पढ़ें तो एक बात साफ होती है कि क्रांतिकारी प्रचारक होते हुए भी अंदर से बड़े अहिंसक और दयालु किस्म के इंसान थे। उन्होंने किसी आदमी के खिलाफ लड़ाई नहीं

1 झूठ 2 सत्य का प्रभाव

3 वास्तव में

लड़ी अपितु सिद्धान्तों का प्रतिपादन करते थे। उन्हें किसी आदमी ने दुःख दिया तो हंसकर झेला। मगर System खराब था तो उसे तोड़ने के लिए अपनी ताकत होम दी। जब ईसा 30 साल के थे तो एक संत Baptist के संपर्क में आए। इस संत का ईसा के व्यक्तित्व पर गहरा प्रभाव पड़ा। ईसा की जिंदगी में सबसे बड़ा धक्का तब लगा जब वहां के यहूदी शासक Herald ने Saint John the Baptist पर देशद्रोह का आरोप लगाकर मृत्युदण्ड दे दिया। उस झटके से उबर कर उन्होंने दृढ़ निश्चय कर लिया कि उनके अधूरे कामों को पूरा करूंगा। एक स्थान से दूसरे स्थान पर घूमकर उन्होंने आडम्बरों, अंधविश्वासों और रूढ़ियों का विरोध करना शुरू कर दिया। वाणी में ऐसा जादू था कि लोग स्वतः ही पीछे चलने लगे। समर्थकों की संख्या बढ़ी तो शासकों में खलबली मच गई। जब उसकी आवाज को शांत नहीं कर सके तो पहले की तरह उन पर भी देशद्रोह का मुकदमा दायर कर दिया। कुछ झूठे सच्चे गवाहों तथा कुछ अंदर के गद्दारों के कारण उन्हें भी मृत्युदण्ड दे दिया। उन्हें Cross पर लटकाने का हुक्म हो गया। सिपाहियों ने उनके दोनों हाथों और पैरों में कीलें ठोकीं और उन्हें कांटों का ताज पहनाया। इतनी गहन पीड़ा में भी उनके चित्त की शांति और आन्तरिक क्षमा, करुणा का झरना सूख नहीं सका। जिस प्रकार प्रभु महावीर स्वामी ने स्वयं को कष्ट देने वाले संगम को कहा था, कि संगम तेरे कारण मेरे कर्म कट गए, मगर मेरे कारण तेरे कर्म बंध गए। कर्म के फल मिलते समय जो दुःख तुम्हें झेलना पड़ेगा उस दुःख से मेरी आत्मा व्यथित हो रही है। और मेरी आंखें डबडबा आई हैं। कुछ इसी तरह की स्थिति ईसा मसीह की हो गई। उनकी हार्दिक करूणा उनके ओठों पर उभर आई। क्रॉस पर लटके-2 उसने एक ही बात कहीं—My God, Forgive them. They know not what they are doing 'हे प्रभु, लोग नहीं समझते कि क्या किया जा रहा है इसलिए इन्हें क्षमा कर दो।' चूंकि ये क्षमा के वाक्य उन्होंने शुक्रवार को कहे थे, इसी कारण ईसाई लोग Good Friday के रूप में मनाते है। दरअसल वही दिन, वार, तिथि

और महीना साल पवित्र होता है जब मानव के हृदय से करुणा के स्वर निकलते हैं। दया और करुणा केवल भोजन की शुद्धि तक ही सीमित नहीं है, यह भावों की उदारता तक भी जाती है। अहिंसक भावनाओं वाला इंसान किसी को अपना दुश्मन या शत्रु नहीं मानता। यदि कोई आदमी उसका विरोध करता है तो भी अहिंसक मानव उसे अपना विरोध नहीं मानता, कोई समर्थन करता है तो समर्थन नहीं मानता। विरोध या समर्थन दोनों को स्वीकार करने की क्षमता अहिंसक आदमी में आ जाती है। वह कहता है–

'खूब जी भर के सता, मुझको सताने वाले
तुझको हसरत न रहे, अरे जुल्म के ढाने वाले।'

अहिंसक आदमी सबको बराबर दुआ देता है–

कुल्हाड़ी से कोई काटे कोई या फूल बरसाए
दुआ दे दोनों को यक्सां अजब सारे चलन ही है
जगत् के तारने वाले जगत् में संत जन ही हैं
इन्हें उपमा कहो क्या दें अपन से ये अपन ही हैं ॥

एक सम्राट् का एक चहेता आदमी था। राजा उस पर बेहद विश्वास करता था और बुद्धिमान तो वह था भी। सम्राट् उसके बाहरी आचरण से तो वाकिफ था मगर भीतर को नहीं जानता था। जबकि वह आदमी भीतर से बेहद बेईमान था। राजा का विश्वास उसे हासिल था इसलिए उस पर शंका भी कौन करता। इसलिए उसने राज्य कोष से विपुल धन संपत्ति की चोरी कर ली। जिस दिन सम्राट् को इस गबन की जानकारी मिली, उसने उस वजीर को कहा, 'मैं तुमसे व्यर्थ की बात न करते हुए इतना ही कहूंगा कि तुमने मेरे विश्वास को तोड़ा है इसलिए तुम यहां से हमेशा के लिए चले जाओ। इस संबंध में मैं किसी से कुछ नहीं कहूंगा। और तुमसे भी ये आग्रह करूंगा कि इस बाबत किसी से भी कहने की जरूरत नहीं है।' सम्राट् की बात सुनकर वजीर का हृदय परिवर्तन हो

गया। वह सम्राट् के प्रति समर्पित भावना से बोला, 'मैं आपका आभारी हूं जो आपने मुझ जैसे कृतघ्न के लिए इतनी उदारता, दयालुता दिखाई। आप मुझे फांसी भी दे सकते थे किंतु आपकी महानता इतनी है कि आपने मेरे अपराध को क्षमा कर दिया।'

ये तब्दीली तभी आती है जब एक इंसान का Level बहुत ऊंचा उठ जाता है। जहां अपने और पराए का भेद समाप्त हो जाता है।

शायद कुछ लोग सोचते होंगे कि विरोधी के साथ सहृदयता, उदारता बरतने से क्या विरोधी की दुष्प्रवृत्ति को बल मिलेगा। इसका जवाब वीतराग देवों ने दिया है कि– **'जो उवसमेइ अत्थि तस्स आराहणा, जो न उवसमेइ नत्थि तस्स आराहणा।'** जो अपनी ओर से उपशम और क्षमा भाव रखता है वह आराधक ही होता है, विराधक नहीं। वह किसी की निगाह में उत्तीर्ण है या अनुत्तीर्ण यह Secondary चीज है, पर भगवंतों की नज़र में वह उत्तीर्ण है। फिर भी अधिकतर संभावना ये है कि आप यदि मन, वचन और काया से अहिंसा का पालन करते हो तो 80-90 प्रतिशत लोग विरोध का त्याग कर देते हैं। गांधी जी ने अपने राजनैतिक जीवन में ऐसे काफी प्रयोग किए थे और उनका Result भी सामने आया था। उदाहरण के तौर पर दक्षिण अफ्रीका में उन्होंने गोरी सरकार के विरुद्ध न्याय दिलाने के लिए संघर्ष किया। भारतीयों को उनके धर्म के अनुसार किए गए विवाह को मान्यता दिलानी थी। उनके प्रवेश और प्रवास के अधिकारों की सुरक्षा करवानी थी तथा और भी कई काम थे जिनके लिए उन्होंने सन् 1913 में अपने पहले सत्याग्रह संग्राम की मुहिम चलाई। जिसमें नेटाल के कोयला खान के मजदूर तथा जोहान्सबर्ग, डरबन आदि के हजारों सत्याग्रही शामिल हुए। गांधी जी की पहली शर्त थी कि ये आंदोलन वही चलाएंगे जो अहिंसा को अपना जीवन सिद्धांत मानकर चलेंगे। इस आंदोलन में हिंसा तोड़-फोड़ के लिए कोई स्थान नहीं होगा। सरकार ने हजारों लोगों को गिरफ्तार किया, मुकदमे चलाए। मगर विश्व के इस प्रथम अहिंसक युद्ध ने सरकार

के अस्त्र-शस्त्रों की धार कुन्द कर दी और अंततः विजय अहिंसा को मिली। भारतीय प्रजा को अपने सभी अधिकार मिले। देश के सर्वोच्च नेता जो गांधी जी के पक्के विरोधी थे उन्होंने सर्वाधिक सम्मान दिया तथा आजीवन मित्र और प्रशंसक बने।

अहिंसा का मतलब वही जानते हैं,
जो इंसान को अपना भगवान् मानते हैं।

इसी अहिंसा धर्म को प्रभु महावीर ने सबसे बड़ा सिद्धांत बताया है। जिन आत्माओं ने अहिंसा को सच्चे मन से अपनाया है, उनका यहां भी कल्याण होगा, आगे भी कल्याण होगा।

संघ शास्ता शासन प्रभावक पूज्य गुरुदेव श्री सुदर्शन लाल जी म. का संक्षिप्त परिचय

जन्म	:	4 अप्रैल 1923
स्थान	:	रोहतक, बावरा मोहल्ला (हरियाणा)
पितामह	:	श्री जग्गूमल जी म. (दीक्षित)
पिता	:	श्री चंदगीराम जी एडवोकेट
माता	:	श्रीमती सुन्दरी देवी
दीक्षा	:	18 जनवरी 1942
दीक्षा स्थान	:	संगरूर (पंजाब)
प्रगुरु	:	बहुसूत्री श्री नाथूलाल जी म.
गुरुदेव	:	व्याख्यान वाचस्पति गुरुदेव श्री मदन लाल जी म.
शिष्य संख्या	:	29
देवलोक गमन	:	25 अप्रैल 1999
स्थान	:	शालीमार बाग, दिल्ली